चारु चिन्तन

भूमिका लेखक
डॉ० सत्येन्द्र

लेखिका
डॉ० गायत्री वैश्य
रीडर, हिन्दी विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

रिसर्च : दिल्ली

रिसर्च पब्लिकेशन्स इन सोशल साइंसेज 2/44 अन्सारी रोड दरियागंज नई दिल्ली-2 एवं
त्रिपोलिया बाजार, जयपुर-2 द्वारा प्रकाशित
हेम प्रिन्टर्स जयपुर में मुद्रित

भूमिका

यह पुस्तक डॉ० गायत्री वैश्य के 26 निबध आदि का सग्रह है जो मुझे लगता है कि लेखिका के 'चिंतन के चारु चरण' हैं। समय-समय पर विविध आवश्यकताओ से प्रेरित बिन्दुओ ने इन्हे चिंतन करने और उसे अभिव्यक्त करने के लिए प्रेरित किया वही तो इस सग्रह मे सकलित किया गया है। डॉ० गायत्री वैश्य सजग और प्रबुद्ध महिला है और राजस्थान विश्वविद्यालय के हिंदी-विभाग मे रीडर भी है अत यह मानना होगा कि जीवन के प्रत्येक क्षण को आपने बिना चिंतन के नही जिया होगा। प्राध्यापिका होने के नाते आपमे यथार्थ मानव वृत्ति की भावना भी होनी ही चाहिए तभी तो आपके चिंतन युक्त लेखन मे शब्द और अर्थ के सहित होने से उद्भूत सहित्य की मूल सवेदना को ही ग्रहण नही किया गया वरन् पद और अर्थ से सम्पृक्त होकर जीवन के तात्विक मूलमर्म की अनुभूति भी प्राप्त की है।

डॉ गायत्री वैश्य गहन अध्ययन मे प्रवृत्त रहने वाली महिला हैं यह उनके इन लेखो से सिद्ध होता है। वे नई चेतना से प्रकाशित पारिवारिक और सामाजिक परिवेश को बनाने वाली गृहिणी है। भारतीय सस्कृति के परम्परागत मूल्यो से जुडी होने पर भी वे बौद्धिक धरातल पर नई विचार-क्रान्ति की उन्नायिका हैं, इसकी झलक पर्याप्त मात्रा मे इन लेखो से मिलती है।

राष्ट्रीयता आपकी जीवन्त प्रेरणा के रूप मे आपके शब्द-शब्द के साथ विद्यमान है। गुरुकुल मे आरम्भिक शिक्षा पाने के कारण आर्य समाज का वह प्रभाव तो आप पर होना ही चाहिए

जो आपको एक तार्किक चिंतनमयी मेधा प्रदान करे, जो आपको भारतीय नैतिक मूल्यों के ठोस धरातल पर अडिग खडा करे, जो आपको व्यक्ति और समाज के अन्तरग सम्बन्धो को प्राचीन ऋषियो की दृष्टि से देखते हुए भी नवनव उन्मेषो को ग्रहण करने के लिए सदा उत्सुक बनाए—और यह सब भी डॉ० वैश्य के इन लेखो के आधार पर ही मैं कह रहा हूँ।

निस्सन्देह यह सग्रह इन सभी बातो से पठनीय बन गया है। लेख छोटे-छोटे है यह विशेषता इसे आकर्षक बनाती है। राष्ट्र, समाज और साहित्य की विचारमाला वाले इस सग्रह का मैं हार्दिक स्वागत करता हूँ और आशा करता हूँ कि हिन्दी-जगत् मे इसका स्वागत होगा।

छोटे-छोटे लेखो के इस सग्रह के लिए छोटी भूमिका ही शोभा दे सकती है। यह भूमिका छोटी ही मानी जायगी ऐसा मैं समझता हूँ।

सत्येन्द्र

दो शब्द

'चारु चिन्तन' जीवन के बहुमुख चिन्तन आयामो का एक स्वल्पकाय चर है। साहित्य की विद्यार्थी, अध्यापनवृत्ति और घर-गृहस्थी इन तीनो की सम्पृक्ति मे ढले जीवन की अनुभूति एव चिन्तन की यत्किंचित् अभिव्यक्ति इसमे समाहित है। इसमे गद्य की विविध विधाएँ सकलित है। साहित्यिक निबध है, कुछ आलोचनात्मक और कुछ ललित। रेडियो के लिए लिखे गए 'रेडियो नाट्य रूपान्तर' हैं और कुछ आधुनिक परिवर्तित जीवन-मूल्यो से सम्बन्धित सामाजिक लेख है। इन सबके अतिरिक्त घर-बाहर का द्विधा व्यक्तित्व वहन करती आधुनिक गृहिणी के अनुभवों से उद्भूत गृहिणी की डायरी के मार्मिक पृष्ठ हैं।

'चारु चिन्तन' मे कुछ नई, रोचक एव विचारोत्तेजक सामग्री पाठको को मिलेगी ऐसा मेरा विश्वास है। शरद्चन्द्र चट्टोपाध्याय के दो अति प्रसिद्ध उपन्यास 'चरित्रहीन' व 'विराज बहू' भारतीय नारी के पतिव्रत-धर्म सम्बन्धी दो परस्पर भिन्न रूपो के अत्यन्त मार्मिक एव हृदय-द्रावक चित्र है। इन दोनो उपन्यासो के सूक्ष्म किन्तु सवेदनशील अशो की पूर्ण समाहिति के साथ पुस्तक मे प्रस्तुत दोनो नाट्य-रूपान्तरणो के प्रसारण ने श्रोताओ को बहुत प्रभावित किया अत इनकी एकाधिक आवृत्ति रेडियो पर हो चुकी है। 'मन्थरा का पश्चाताप' भी अपनी तरह का नया एव मौलिक रूपक है जिसमे युगो से उपेक्षित, तिरस्कृत मन्थरा अपने स्नेहिल एव निश्चल व्यक्तित्व की दर्द भरी कथा लेकर उपस्थित हुई है।

'कन्या अपितृत्व खलु नाम कष्टम्' लेख सस्कृत की पुरानी उक्ति 'कन्या पितृत्व खलु नाम कष्टम्' की विरोधी आधुनिक भावना की अभिव्यक्ति है जिसमे पुत्र के महत्त्व पर प्रश्न-चिन्ह लगाती आधुनिक पुत्रियाँ घर परिवार के लिए अधिक स्पृहणीय एव काम्य मानी गई हैं। सोचती हूँ यह लेख पुत्र प्रधान भारतीय सस्कृति के विश्वासी लोगो को परम्परा से हटकर नई दिशा मे सोचने के लिए बाध्य करेगा। स्नेह-विरल आधुनिक जीवन मे पुत्र की अपेक्षा पुत्रियों की कामना आश्चर्य का विषय नही। 'चारु चिन्तन' मे इसी प्रकार के कुछ अन्य निबध व डायरी के पृष्ठ है जो समाज एव नारी-जीवन के बदलते परिवेश की कहानी हैं और जो कल्पना नही जीवन के यथार्थ हैं। अपनी विविधता मे यह 'चारु' स्वल्पकाय होते हुए भी 'चारु' है, और चिन्तन प्रधान है।

पुस्तक के प्रकाशन मे श्री पी. सी. जैन ने जो स्नेह, उत्साह एव तत्परता प्रदर्शित की उसके लिए मै उनकी हृदय से आभारी हूँ। मैं जानती हूँ कि मेरी ओर से उन्हे पूरा महयोग नही मिला। किसी न किसी कारणवश उन्हें सामग्री यथा-समय नही मिल पाई जिससे प्रकाशन मे अप्रत्याशित देरी हो गई, फिर भी उन्होंने धैर्यपूर्वक मुस्कराते हुए इसकी प्रतीक्षा की, इसके लिए उन्हें पुन धन्यवाद देती हूँ।

आदरणीय डॉ० सत्येन्द्र ने अपना अमूल्य समय देकर इसकी भूमिका लिखने का कष्ट किया अत मैं उनकी अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। उनकी कृपा व आशीर्वाद की तो मैं सदा ऋणी रहूँगी। मेरी शोधछात्रा कु. धनवन्ती दाधीच ने अपने सुन्दर व स्पष्ट अक्षर-लेखन से पुस्तक की पाडुलिपि तैयार करने मे जो सहयोग दिया उसके लिए वे आशीर्वाद की पात्र हैं। श्रीयुत वैश्य साहब के सहयोग के विना मेरा कोई कार्य पूरा नही होता अत उनके प्रति मेरी कृतज्ञता शाश्वत है।

छपाई की अशुद्धियाँ आज के प्रकाशन की सर्वमान्य विशेषता है 'चारु चिन्तन' उसका अपवाद नही है। सस्कृत के उदाहरण ठीक से नही छप सके। विज्ञ पाठक उन्हे स्वय ही सुधार लेंगे।

'चारु चिन्तन' के छोटे-छोटे अल्प समय साध्य लेख पाठको को किसी भी प्रकार रुचिकर प्रतीत हुए तो मैं अपनी अभिव्यक्ति सार्थक समझूँगी।

गणतत्र दिवस, 1980 — गायत्री वैश्य

विविध

1

रजनी पनिकर के उपन्यासों में पुरुषों का स्वरूप

सदियो से हम पुरुष की दृष्टि से नारी और पुरुष के सम्बन्धो को जानते और पहचानते रहे हैं। नारी के जीवन मे पुरुष का क्या महत्त्व है ? वह पुरुष को किस दृष्टि से देखती है ? समाज मे पुरुषो का क्या स्थान है आदि प्रश्न पुरुषो की लेखिनी से ही साहित्य या समाज मे अभिव्यक्ति पाते रहे हैं। स्त्रियाँ समाज के व्यापक जीवन से इतनी दूर रही या रखी गई कि वे पुरुषो के बारे मे अपना स्वतन्त्र दृष्टिकोण कभी प्रकट नही कर सकी। पुरुष ने कहा "पुरुष के बिना स्त्री की कोई गति नही है" स्त्री ने सहर्ष स्वीकार किया। उसने कहा "स्त्री प्रपच है, माया है, पुरुष को उससे दूर रहना चाहिए, उसने स्वीकार किया।" किसी ने कहा "स्त्री दासी है, पैसो से खरीदी जा सकती है या भोग-विलास की वस्तु है" स्त्री ने हृदय पर पत्थर रख कर यह भी सहा। सदियो वह चुप रही। मूक बनी पुरुष की प्रत्येक लीला देखती रही। किन्तु समय परिवर्तनशील है। पुराना युग बदल गया है। आज का युग नारी-प्रधान युग है। आज नारी प्रधान मन्त्री जैसे उत्तरदायी पद से लेकर किसी कार्यालय के मामूली क्लर्क तक की स्थिति मे कार्य करती दिखाई देती है। घर की चारदीवारी मे बन्द पुरुषो की कृपा पर जीने वाली नारी आज अपने को पुरुष से स्वतन्त्र एक शक्तिशाली व्यक्तित्व के रूप मे अनुभव करने लगी है। पुरुषो की व्यापक दुनिया मे आकर वह पुरुष के स्वभाव और व्यक्तित्व को बहुत अच्छी तरह समझने और पहचानने लगी है तथा ससार के आगे प्रकट करने लगी है। आधुनिक युग की नारी की दृष्टि मे पुरुष का क्या महत्त्व है ? वह उसे किस दृष्टि से देखती है ? इसे आज की महिला लेखिकाओ ने बडे व्यापक रूप मे चित्रित करना प्रारम्भ कर दिया है।

हिन्दी की प्रसिद्ध लेखिका श्रीमती रजनी पनिकर ने अपने उपन्यासो मे पुरुष को बीसवी शताब्दी की उस नारी की दृष्टि से देखा है जो नए सस्कार, नई शिक्षा और नए विचार लेकर घर से बाहर जीविका के लिए पुरुष के सम्पर्क मे आने लगी है। स्वतन्त्र रूप से जीविका उपार्जन करने वाली या कामकाजी महिलाओं के साथ

पुरुष का कैसा व्यवहार है तथा पति रूप मे उसकी क्या स्थिति है प्राय इन दो दृष्टिकोणो से लेखिका ने पुरुष के बारे मे अपने विचार प्रकट किए हैं। लेखिका के अनुसार जीविका के लिए पुरुष के सम्पर्क मे आने वाली स्त्री की दृष्टि मे कोई पुरुष नारी को लोलुपता-रहित दृष्टि से नही देखता। पुरुष की दृष्टि में अब भी नारी का केवल एक ही मूल्य है—उसका शरीर एव उसका सौन्दर्य। आजकल का प्रेमी पुरुष किसी भी नारी से बात करता है तो कुछ ऐसा भाव लिए हुए कि वह नारी उन क्षणों मे उसकी पत्नी के समान होती है। 'मोम के मोती' उपन्यास की नायिका माया इसी वर्ग की नारी है। वह सेठ धनपति के विज्ञापन फर्म मे काम करती है। फर्म के काम से वह जितने पुरुषो के सम्पर्क में आई, सबके व्यवहार मे उसे झूठे प्यार और प्रेम का दिखावा तथा एक प्रकार की लोलुपता झलकती है। सेठ धनपति, मधुकर, कवाड बहुत से "सैनिक तथा अफसरो के सम्पर्क मे उसने सदैव यही अनुभव किया कि प्रत्येक स्थान पर पुरुष उसकी ओर एक जैसी दृष्टि से देखता है मानो वह रसगुल्लो की एक प्लेट है जिसमे सबका साझे का अधिकार है।" सेठ धनपति माया से कहते हैं—"माया तुम्हें अपनी शक्ति पर विश्वास क्यो नहीं, तुममे बहुत शक्ति है। तुम चाहो तो पुरुष को शतरंज के मोहरों की तरह उसके स्थान पर बिठा सकती हो।" माया पुरुष की इन चाटूक्तियो के अन्तरग भाव को समझती हुई अपने दाएँ बाएँ देखकर यह अच्छी तरह जान लेना चाहती है कि कोई और भी न देख रहा हो कि राजधानी के करोडपति सेठ धनपति एक नारी की सार्वजनिक जलपान-गृह में कैसे हाथ जोड कर पूजा करते हैं।

लेखिका की दृष्टि मे घर से बाहर पुरुष के साथ काम करने वाली नारी के विषय मे अधिकाश पुरुष आज तक अपनी धारणा अच्छी नहीं बना सके। उन्हीं के शब्दों मे "न जाने क्यों पुरुष का विश्वास नारी की पवित्रता पर टिक नही पाता यदि उसे पता हो कि अमुक नारी किसी अन्य पुरुष के सम्पर्क मे आती है। जीवन की विषमताओं को सुलझाने के लिए आज नारी को क्या नहीं करना पडता। देखादेखी, झूठे आडम्बर तथा नई चाल के प्रचलन मे आकर पुरुष ने नारी को स्वतन्त्रता तो दी है पर उस पर विश्वास नहीं आया। वह नारी-पुरुष की मैत्री की पवित्रता नही समझ पाता। स्त्री-पुरुषो का सम्बन्ध उसके विचार मे केवल एक है और वह सदैव यही समझता है कि इसके अतिरिक्त और कोई सम्बन्ध हो ही नही सकता।" मधुकर ने माया से एक बार कहा भी है—"पुरुष-पुरुष मे बौद्धिक समझौता हो सकता है, नारी और पुरुष मे मन का और शरीर का सौदा होता है।"

श्रीमती रजनी पनिकर ने पुरुष की धारणा को बहुत से उदाहरण देकर सिद्ध किया है। मधुकर, कवाड, सेठ धनपति माया को मात्र कामकाजी औरत मानकर अपनी वासना का ग्रास बना लेना चाहते हैं, किन्तु आज की नारी उनके इस रूप को खूब पहचानती है। माया जानती है कि मधुकर जैसे पुरुष लडकियो का जीवन बिगाड देते हैं। वे नही समझते कि हँसी-हँसी मे इनसे क्या हो जाता है

जिसका दायित्व केवल नारी पर ही रहता है। वह चाहती है कि ऐसा सामाजिक कानून होना चाहिए जिसमे मधुकर जैसे व्यक्तियो का व्याह कभी नही हो। जहाँ तक माया का वश चलता है उनकी मनोकामना सफल नही होने देती किन्तु भाग्य की विडम्बना है कि फिर भी वह समाज मे ऊँचा स्थान नही बना पाती।

पति रूप मे पुरुष ने नारी पर जितने अन्याय और अत्याचार किए हैं आज की स्वतन्त्र नारी पुरुष के इसी रूप को सबसे अधिक घृणा की दृष्टि से देखती है। पुरुष आधुनिक नारी को पतित्व की पुरानी मर्यादा के सकुचित दायरे मे रखकर स्वय अपने कत्तव्य से विमुख रहना चाहता है। वह चाहता है कि पत्नी नौकरी भी करे और उसके स्वामित्व की शर्तों का भी पालन करे। लेखिका की दृष्टि मे पुरुष का यह सबसे भौंडा रूप है। पढी-लिखी स्वतन्त्र नारी डिबिया मे बन्द करने की चीज नही जिस पर किसी की दृष्टि न पडे। लेखिका ने पुरुष के पति रूप की सर्वत्र भर्त्सना की है। एलिस का जोन से प्यार है, वह उससे शादी करना चाहती है। उसे विवाह से पूर्व गर्भ रह गया है पर जोन खुद नौकरी न करके हमेशा उसे पैसे के लिए तग करता है और पैसा न देने पर उसकी नौकरी छुडाने की धमकी देता है। एलिस बडी परेशान है। उपन्यास की नायिका माया उससे कहती है—'तू जोन को छोड क्यो नही देती।" एलिस के आँसू एक क्षण को रुक जाते हैं। वह कहती है—"यह कैसे हो सकता है।'' माया का मुँह लाल हो गया, "क्यो तू पुरुष के बिना जी नही सकती और जी कर जोन को छोड जिसी टामी या हेरी से मेल-जोल बढा। तू एक जोन के पीछे क्यो पडी है? वह तेरी जान लेने पर तुला है। एक ओर तू उसे रुपये देती है और दूसरी ओर धमकियाँ सहती है।"

चम्पा नामक एक स्त्री विस्थापित स्त्रियों के कैम्प मे रहती है। देखने मे सुन्दर है। एक पुरुष उसे अपनी पत्नी बनाकर घर ले गया, किन्तु थोडे ही दिनो मे उसने चम्पा का जीना दुष्कर कर दिया। वह हर बात मे ताने देता था 'तुम कबाइलियो द्वारा भगा ली गई थी। तुम उनके यहाँ रह आई हो। तुम्हारा धर्म कुछ नही है। तुम वही मर क्यो नही गई?" आखिर उसे घर से निकाल दिया। लेखिका की दृष्टि मे ये पुरुष सब नीच होते हैं। नारी की मनोव्यथा नहीं समझते। सुधाकर अपनी सुन्दर पत्नी कला को छोडकर चम्पा के साथ भाग गया। चम्पा को भी बाद मे धोखा देकर बम्बई की और लडकियो के साथ रगरेलियाँ करने लगा। पुरुष को पैसा चाहिए या नारी, इन दो के सिवाय उसके जीवन का लक्ष्य ही कुछ नही है। कवाड ने अपनी पत्नी ज्योत्स्ना को इसलिए छोड दिया कि वह सुन्दर और सभ्य नही है। उससे विवाह इसलिए किया था कि उसके पिता के पास पैसा था और वह उसे विलायत भेज सकता था। विवाह का झाँसा देकर कवाड न जाने कितनी स्त्रियो के जीवन से खेल चुका है। पर ये सब पुरुष स्त्रियो के विषय मे अत्यन्त सकीर्ण मनोवृत्ति वाले होते हैं। ये जब अपनी पत्नी या प्रेमिका को किसी और पुरुष के साथ बातें करते या हँसते देखते हैं तो जलकर राख हो जाते हैं। 'जाड़े की

धूप' उपन्यास की नायिका भारती के पति पवन का व्यवहार इस बारे मे दर्शनीय है। "वह पति जो रोज ही डके की चोट पर कहता है तुम जो चाहो करो, जो तुम्हारी इच्छा हो ठीक वही करो मेरी इच्छा अनिच्छा की अपेक्षा न करो" वही मलकानी के घर आने पर कितना उफनता है। मलकानी भारती का ऑफिसर है। वह मिलने के लिए घर आया है। पवन क्रोध से उबलता हुआ भारती से कहता है "माना कि तुम मलकानी के साथ काम करती हो, परन्तु इसका मतलब यह कहाँ है कि वह यहाँ भी आए और घटो बैठा रहे, घर की औरतो के साथ चुहल करता रहे। किसी की पत्नी का मित्र उसे घर पर मिलने आए तो पति को बुरा नहीं लगता ?" भारती को पवन के इस क्रोध पर हँसी आती है क्योकि वह पति जिसने अपने उत्तरदायित्व को एक दिन अच्छी तरह नही जाना, अपने अधिकार की रक्षा कितनी खूबी से करना जानता है। लेखिका की दृष्टि मे इसीलिए आज पचास प्रतिशत विवाह जीवन-सम्बन्ध न रहकर आँख मिचौनी का खेल बन कर रह गए हैं। प्रत्येक पुरुष समर्पण चाहता है। नारी उसमे इस तरह समा जाए जैसे वायु मे सुगन्ध। कोई भी पति यह सहन नही कर सकता कि पत्नी किसी और को चाहती हो और उसके घर मे रहे उसके बच्चो की माँ कहलाए।" पति मे हमारे काल्पनिक नायक से यदि कम गुण हो तो पति को यह अधिकार तो होना चाहिए कि वह सोचले कि पत्नी उसकी कल्पना की कसौटी पर बिल्कुल खरी नही उतरती। लेखिका पूछती है—"वैवाहिक जीवन समझौता है ?" नही, हमारा सारा जीवन ही परिस्थितियों के साथ समझौता है।

लेखिका को उन नारियो से चिढ है जो हमेशा किसी आदर्श पुरुष की प्रतीक्षा मे रहती हैं। उसने कभी किसी को आदर्श नहीं माना। आदर्श का मापदण्ड अपनी अपनी कल्पनानुसार होता है। बीसवी सदी की नारी को पुरुष जी भर कर दोष देता है—कभी अपने मे भी झाँक कर देखा है उसने ? पुरुष ने चाहे वे किसी देश के हो, नारी को कभी अलग व्यक्तित्व प्रदान नही किया। पति होने के नाते अपने ही व्यक्तित्व का एक भाग समझा है। किन्तु आधुनिक नारी की दृष्टि मे पति का और विवाह का पुराना स्थान नही रह गया। उसकी दृष्टि मे ब्याह आधुनिक लडकी की आर्थिक आवश्यकता नही है। यह उसकी सुरक्षा का दुर्ग भी नही। यह केवल सम्पन्न एव धनी परिवार की लडकियो के लिए एक मन बहलाव है। पति एक खिलौना है, एरिस्टोक्रैमी है। पुरानी माएँ ब्याह से बढ़ कर प्रगतिवादी बात नही सोच सकती थी। उनकी कल्पना यही तक सीमित थी। किन्तु नए युग की वह नारी अपने भाग्य पर सन्तोष करती है जिस पर कोई पुरुष विजय नही पा सका।

श्रीमती रजनी पनिकर ने नारी की दृष्टि से पुरुष के सभी मनोभावो को अच्छी तरह स्पष्ट करने की चेष्टा की है। आदर्श की रट लगाने वाले पुरुष में धन की लालसा किस सीमा तक होती है, इसका उदाहरण है सुधाकर। सुधारक को जब यह मालूम होता है कि वह जिस लडकी से शादी करने जा रहा है, सेठ धनपति

उसके मौसा हैं तो फूला नहीं समाया। अपने भाई से कहता है—कला इतने बड़े आदमी की भांजी है ओह। यह हमारे लिए कितने गर्व की बात है। लेखिका पुरुष के गर्व पर प्रहार करती हुई कहती है "सुधाकर भी रुपये को इतना महत्त्व देता है। सेठ धनपति मे चरित्र की कौनसी सबलता है। वह कौन से महान् चिन्तक हैं ? कौन से एवरेस्ट विजेता हैं ? पेनिसिलिन के आविष्कारक हैं ? उनके पास केवल रुपया है जो उन्होंने लाखो व्यक्तियों के खून से जमा किया है। उसके लिए उन्होने हजारों व्यक्तियो को धोखा दिया होगा, जाली कागज तैयार किए होगे। विधि की विडम्बना है कि वही सेठ धनपति इनके सम्बन्धी बनने जा रहे हैं।"

इस प्रकार आज की नारी की दृष्टि में पुरुष का मूल्य घटता जा रहा है। वह पुरुष के पति, प्रेमी, स्वामी, धनी तथा समाज सम्मानित रूपो की एक-एक पर्त खोलकर समाज के सामने रख देना चाहती है ताकि पुरुष के सम्बन्ध में सदियो पुरानी समाज की धारणाएँ बदल कर नया रूप ले सकें।

2

नयी कविता की प्रेषणीयता

नई कविता का साहित्य बडी तीव्र गति से विकसित एव प्रकाशित हो रहा है। नए कवि रक्तबीज की भाँति बढते जा रहे हैं। शायद ही कोई त्रैमासिक, द्वैमासिक, मासिक या साप्ताहिक पत्रिका ऐसी होगी, जिसमे आजकल नई कविता या उसकी अग्रवर्ती कविताएँ और उनके विश्लेषण विवेचन सम्बन्धी लेख प्रकाशित न होते हो। कई पत्रिकाएँ तो विशेष रूप से इन्ही की विवेचना के लिए या इनकी लोकप्रियता बढाने के लिए प्रकाशित हुई हैं, जैसे 'नई कविता' 'नई धारा' आदि। विभिन्न विश्व-विद्यालयो की तथा अन्य कई प्रकार की साहित्यिक गोष्ठियो मे भी समय-समय पर इसकी चर्चा-परिचर्चा होती रहती है। किन्तु इतने विकास, प्रसार और प्रचार के बाद भी नई कविता जन-मन और जन-जीवन से काफी दूर दिखाई देती है। वह उनके हृदय मे उतर नही पाई, केवल एक विशिष्ट वर्ग की अत्यन्त सकीर्ण सीमा मे परिबद्ध है। सामान्य पाठको के हृदय मे नई कविता किसी प्रकार की सवेदना या अनुभूति जगाने मे असमर्थ सी प्रतीत होती है। सामान्य पाठक से तात्पर्य यहाँ देहाती किसान, मिल मालिक या मिल मजदूर, व्यापारी, मन्त्री, सिपाही आदि से नही अपितु उनसे है, जिन्हे कविता पढने की ललक है, जो साहित्य के क्षेत्र मे कुछ अधिकार रखते हैं, जो बुद्धिजीवी हैं और अध्ययन-अध्यापन मे सम्बद्ध हैं। इन वर्ग मे भी उन पाठको से तात्पर्य नही जिनकी विचारधारा किन्ही पूर्व-निश्चित सिद्धान्तो से इतनी परिवेष्टित है कि उन पर नवीन प्रकाश किरणें या नवीनता का कोई आयाम, प्रभाव डालने मे असमर्थ है। यद्यपि कविता की अनुभूति के लिए किसी प्रकार के वर्ग बनाना कवि की असफलता का ही द्योतक होता है क्योकि कवि की अनुभूति किसी वर्ग विशेष के लिए अभिव्यक्त नही होती वह तो समान रूप से सबको अपनी अनुभूति का उपभोक्ता बनाना चाहता है, और नए कवि का तो विशेष आग्रह व्यष्टि से समष्टि की ओर बढने का रहा है जिसके लिए उसने जीवन के अनेक अनदेखे, अछूते और सवेद्य विषय तथा सरल जन-भाषा के शब्द, मुहावरे, लोकगीतो की धुनें अपनाई हैं। उसने ही सर्व-प्रथम उषा देवता से लेकर गधे तक, नग्न यौन वासना से लेकर सामाजिक क्रान्ति तक, देहाती अमराई से लेकर कल पुर्जों तक, अवचेतन से लेकर स्थूल के अनुत्तेजित चित्रण

तक को कविता का विषय बनाकर उन्हे सर्व सवेद्य बनाने के लिए पुराने उपमानों की धूल झाडकर नए अर्थों से सजाया है, तथा अन्य नए उपमानो नए प्रतीको और नए शब्दो का प्रयोग प्रारम्भ किया है। फिर भी नया कवि किसी वर्ग को सोलहवी या उन्नीसवी सदी का मानकर अपनी कविता की नवीनता सिद्ध करना चाहता है, अत उनका यहाँ उल्लेख करना पडा किन्तु है यह सिद्धान्त गलत ही। कवि की सशक्त वाणी युगो की परिधि तोडकर मानव हृदय को प्रभावित करने मे समर्थ होती है फिर आज का पाठक तो उसका समकालीन है।

किसी काव्यधारा की सफलता उसके विपुल साहित्य पर आधारित न होकर कथ्य की महत्ता और कथन की प्रेषणीयता पर निर्भर होती है। नई कविता अपनी रसवत्ता और अर्थवत्ता दोनो मे अभी तक पाठको के बीच एक प्रश्न-चिह्न बनी हुई है। रसवत्ता या रसात्मकता का प्रसग छेडना शायद यहाँ अनुपयुक्त होगा क्योंकि साहित्यिक रस की बात आजकल पिछडेपन की बात समझी जाने लगी है। रस और वैज्ञानिक युग मे क्या सम्बन्ध किन्तु सप्रेषणीय होना तो कविता का धर्म है, उसकी शिकायत तो पाठक कवि से कर ही सकता है?

नए कवि का सारा प्रयत्न कविता के प्रेषणीय पक्ष पर था, उसके अन्य पक्ष उसकी दृष्टि मे गौण थे। अज्ञेय के शब्दो मे जो व्यक्ति का अनुभूत है, उसे समष्टि तक कैसे उसकी सम्पूर्णता मे पहुँचाया जाए—यही पहली समस्या है जो प्रयोगशीलता को ललकारती है। इसके बाद इतर समस्याएँ हैं–कि वह अनुभूत ही कितना बडा या छोटा, घटिया या बढिया, सामाजिक या असामाजिक, ऊर्ध्व या अध या अन्त या वहिर्मुखी है।' परन्तु तीन दशको की लम्बी अवधि तक इस समस्या को सुलझाने के प्रयत्न मे नई कविता कितनी अप्रेषणीय हो गई है इसे सभी अनुभव कर रहे हैं। आज की कविताएँ पाठको को ऐसे अजायबघर प्रतीत हो रही हैं जिन्हे जानने और समझने के लिए गाइड या किसी पराविज्ञान के निष्णात पण्डित की आवश्यकता है। ये कविताएँ एक विशेष और बहुत ही सकीर्ण वर्ग मे भले ही अपना कुछ महत्त्व रखती हो, सामान्य पाठक की दृष्टि मे ये कवि की बहक के सिवाय कुछ अर्थ नही रखती। वह इन कविताओ को एक सिरे से दूसरे सिरे तक, ऊपर से नीचे तक, शुरू से अन्त तक भली-भाँति देखने के बाद बडी रिक्तता और तिक्तता का अनुभव करता है। यदि वह दस पाँच के बीच बैठकर पढता या सुनता है तो 'हास्यरस और सस्ते मनोरंजन' के सिवाय अन्य कोई सार्थकता इससे उपलब्ध नही होती है। निश्चय ही यह कवि की गहन अनुभूति की उपलब्धि नही है, वह भले [illegible] उपलब्धि समझे।

उदाहरणार्थ नवीनतम कवि जगदीश चतुर्वेदी की एक कविता [illegible] प्रस्तुत है—

कल रात मुझ मे उग आए दो पेड़
कैक्टस और गुलाब,
दो छोटे-छोटे हाथ,
दरवाजा थपथपाते रहे।

इन पंक्तियो मे कवि मे पेड़ उगना, दो छोटे-छोटे हाथ—शायद भावो के—दरवाजा थपथपाना-शायद मुख का—पुन शिशु का जन्म शीर्षक सभी उपमान इस प्रकार प्रयुक्त हैं कि शीर्षक और कविता मे सगति बैठाना कठिन है। यदि किसी प्रकार खींचतान करके कोई अर्थ निकाल भी लें तो यह नही कहा जा सकता कि कवि का यही तात्पर्य है। नई कविताओ के विषय मे कई उदाहरण ऐसे सुनने में आए हैं कि किसी नए कवि की जिन कविताओ को पाठकों द्वारा श्रेष्ठ रचनाएँ ठहराया गया है रचयिता कवि की दृष्टि मे वे उसकी निकृष्ट रचनाएँ हैं।

अज्ञेय की 'आँगन के पार द्वार' नई कविता की ही नहीं आधुनिक हिन्दी कविता की अत्यन्त प्राञ्जल और प्रौढ उपलब्धि मानी गई है। इस सग्रह मे उनकी श्रेष्ठतम रचनाएँ सग्रहीत हैं, किन्तु इसकी कितनी ही कविताएँ शब्दो के उलझाव के अतिरिक्त किसी प्रकार का भाव जाग्रत नहीं करती। इसमे एक कविता है 'चिड़िया ने कहा'। इसकी कुछ पंक्तियाँ हैं—

मैंने कहा
कि चिड़िया
मैं देखता रहा—
चिड़िया, चिड़िया ही रही।
फिर-फिर देखा
फिर-फिर बोला —
'चिड़िया'
चिड़िया, चिड़िया ही रही।

इन पंक्तियो मे 'चिड़िया' शब्द की पुनरावृत्ति से चिड़िया ही चिड़िया मस्तिष्क मे घूमने के अतिरिक्त पाठक को क्या बोध हो सकता है? तात्पर्य यह नही कि इन पंक्तियों में सार्थकता और अनुभूति नहीं किन्तु यह जिस ध्वनि में, जिस प्रतीक या उपमान द्वारा अभिव्यक्त हुई है उसमे प्रेषणीयता नहीं है। नवीनता के लिए नए उपमान प्रयोग मे लाए जा सकते हैं किन्तु जब तक इन्हे सामाजिकता या व्यापक अर्थ संपृक्ति नही प्राप्त होती तब तक इनका सहज बोध कठिन है। इसी प्रकार की कितनी कविताएँ नित्य-प्रति पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित होती हैं जो नितान्त अद्भुत दिखाई देती हैं। यदि उदाहरण प्रस्तुत करें तो हजार मे शायद दो चार कविताएँ ऐसी होंगी

जो कुछ सार्थक सवेद्य और पुनीत चेतना की नव्य अभिव्यक्ति से सपृक्त हो। शेष सब नमूने की तरह हैं।

नई कविता के कुछ विज्ञ कवि जो कविता का उत्तरदायित्व अनुभव करते है यह अनुभव कर रहे हैं कि उनकी कविताएँ सर्व-सवेद्य नही हैं, अत वक्तव्यो द्वारा उन्हे पाठको के सामने आना पड रहा है जो कवि के लिए बहुत सुखद स्थिति नही है। कवि को अपनी अनुभूति की यदि स्वय व्याख्या करनी पडे तो यह उसकी अभिव्यक्ति की असफलता है। असफलता इसे न भी कहे तो कमी अवश्य है। बालकृष्ण राव ने अपने काव्य सग्रह 'अर्द्धशती' के प्राक्कथन मे लिखा है—"अपनी प्रस्तुत पद्य कृतियो के सम्बन्ध मे क्या कहूँ ? यह स्पष्ट ही है कि प्रत्येक रचना स्वत सम्पूर्ण इकाई है। यदि नही है, यदि उसके अर्थ, आशय, सन्देश को स्पष्ट करने के लिए किसी प्रकार के भाष्य की आवश्यकता है, तो मेरी मान्यता के अनुसार उसमे कोई कमी अवश्य है।" अज्ञेय ने लिखा है "कविता ही कवि का परम वक्तव्य है अत यदि कविता के स्पष्टीकरण के लिए स्वय उसके रचयिता को गद्य का आश्रय लेकर कुछ कहना पडे तो साधारणतया इसे उसकी पराजय ही समझना चाहिए।" (तार सप्तक) तीसरे सप्तक मे कीर्ति चौधरी ने अपने वक्तव्य मे कहा, "समकालीन कविता और समकालीन साहित्य को देखने पर पता चलता है कि हम बडी तेजी से आलोचक बनते जा रहे हैं और भय है कि एक दिन कही ऐसा न आ जाए कि हम निरे आलोचक हो जाएँ, कवि रहें ही नही।"

कठिनाई यह है कि अपनी अभिव्यक्ति की असफलताओ को जानते हुए भी आज के अधिकाँश विज्ञ कवि अपनी असफलताओ का दोष पाठको पर, नए युग पर, पुराने सस्कारो पर थोप कर स्वय मुक्त होना चाहते हैं। नई कविता की अप्रेषणीयता की शिकायत जब पाठको की ओर से आती है तब बहुत से कवि और उनके समर्थक आलोचक उसे पाठको का मनोमालिन्य, हठधर्मी, अनुदारता, पिछडापन आदि बताकर अपनी नवीनता, रूढि मुक्तता, अभारतीयता आदि के आग्रह मे उन्हे झुठलाने का प्रयत्न करते दिखाई देते हैं अथवा युग की उलझी सवेदनाओ को, परस्पर विरोधी भावो की टकराहट को, आधुनिक जीवन की व्यापकता को पाठको तक अक्षुण्ण, यथावत् ज्यो की त्यो पहुँचाने मे कठिनाई उपस्थित कर कविता की दुरूहता, अस्पष्टता और अप्रेषणीयता का समर्थन करते है।

परन्तु दोनो ही तर्कों से पाठको की समस्या का निदान नही होता। प्रथम बात यह कि जिस युग मे कवि जी रहा है पाठक भी उसी युग मे जी रहे हैं और कवि से अधिक यथार्थ मे जी रहे है। कवि कल्पनाओ की उडान मे युग को जीता है और पाठक यथार्थ मे युगीन समस्याओ का और नव-चेतना का सामना करता है। नए युग की उलझनो को, विरोधी भावो की टकराहट को जितना समाज का सामान्य प्राणी यथार्थ मे समझ पाता है शायद कवि नही। अत यह तर्क निरर्थक है

कि पाठक नए युग से अनुप्राणित न होने के कारण नए काव्य का पाठक बनने का अधिकारी नही । पुन समकालीन पाठको को तिरस्कृत कर पचास वर्ष बाद आने वाले युग के लिए अपनी रचनाओ की सार्थकता सिद्ध करने मे कवि को शायद यह ध्यान नही रहता कि आज का युग वैज्ञानिक या आणविक युग है । इसमे आज का दिन कल पुराना हो जाता है । आज की बात कल बासी हो जाती है । जिन मान्यताओ और आदर्शों पर आज वह काव्य-रचना कर रहा है उन्हें कल के लोग रूढि और पुरातनता की उपाधि से विभूपित कर देंगे । पचास वर्ष बाद की नई पीढी उन कविताओ और कवि की अहमन्यताओ को किस दृष्टि से देखेगी पिछले छह दशको मे निरन्तर परिवर्तनशील काव्य धाराओ और काव्य सिद्धान्तो से यह बात उन्हे बहुत स्पष्ट हो जानी चाहिए । कविता को सर्व सुलभ, लोकप्रिय अथवा पर-सवेद्य बनाने का लक्ष्य रख कर चलने वाले कवि और उनकी कविता जन-मानस मे स्थायित्व तो प्राप्त कर सकेगी किन्तु इन तत्त्वो की उपेक्षा करके, इतिहास, सस्कार, परम्परा, भारतीयता, धर्म, हिन्दी और हिन्दी के पाठको को भला बुरा कहकर कविता रचने की प्रक्रिया कितनी बलवती, कितनी स्थायी, कितनी ईमानदार, कितनी नवीन सिद्ध होगी यह समय बहुत शीघ्र स्पष्ट कर देगा । इन तर्कों द्वारा स्वय को नवीन, कुलीन और शेप को प्राचीन सिद्ध करने की मनोवृत्ति को शुद्ध अह, सकीर्णता, कुण्ठा और बौखलाहट के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है?

दूसरी बात है युगीन भावो को यथावत् अभिव्यक्त करने की । कोई कवि युग की, मन की या विचारो की उलझनो को उलझन के रूप मे अभिव्यक्त करके प्रेषणीय नही बना सकता । सवेदना की उलझन स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त होने पर ही सवेद्य या प्रेषणीय हो सकती है, नही तो वह शब्दो की उलझन बन जाती है । हृदय मे भावो की टकराहट से कविता अभिव्यक्त नहीं होती, उसे मार्मिकता प्रदान करने के लिए गहनतम अनुभूति तथा अन्तरतम की व्यापक पहचान आवश्यक होती है । आज की कविता मे जो भी अनुभूति प्रकट की जारही है वह अधिकांश मे शब्दो तथा उपमानो की नवीनता तक सीमित रहकर हृदय को छूने में असमर्थ है । प्रेयसी से किसी प्रेमी को कितना प्यार है इसे दिखाने के लिए कवि यदि 'महगाई भत्ते' से इसकी माप प्रस्तुत करना चाहता है तो पाठक को प्यार की गहराई अनुभव होने की अपेक्षा महँगाई भत्ते के लाभ अधिक अनुभव होने लगते हैं । परछाई की लम्बाई अनुभव कराने में या अपनी खण्डहर स्थिति दिखाने मे—

"टूटे
फूटे
मन्दिर,
उजड़े घर,
खं
ड

इ
र
जिन पर
मेरी परछाई
के
पर"

इस प्रकार की शब्द योजना कितनी सहायका हो सकती है ? कहने का तात्पर्य यह कि युगीन चेतना या विविध व्यापक आयामो के चित्रण के लिए शाब्दिक कसरत की उतनी आवश्यकता नही जितनी मानव-हृदय की व्यापक पहचान की आवश्यकता है। अनुभूति की गहराई और अभिव्यक्ति की उत्कट आकुलता मे भाषा स्वत सवेद्य और प्रेषणीय हो जाती है। अत विषयो को और अनुभूतियो की कठिनाई को दोष देकर पाठको की समस्या से मुह नही मोडा जा सकता। पहेलियाँ सी बुझाने की अपेक्षा स्पष्ट और सीधे शब्दो मे भावो की अभिव्यक्ति उचित है। भवानी प्रसाद मिश्र के शब्दो मे—

जिस तरह हम बोलते हैं, उस तरह तू लिख।
और उसके बाद भी, हमसे बड़ा तू दिख।।

का सिद्धान्त यदि अपनाया जाए तो नए युग की नयी अभिव्यक्ति अधिक सार्थक हो सकती है। यदि नया कवि अपने व्यक्तित्व और काव्य को परिमित-अतिपरिमित सकीर्ण घेरे मे बन्द करने मे अपनी चरम सफलता मानता है तब उसे उनका प्रकाशन नही कराना चाहिए। जो वस्तु सामाजिकता का बाना पहन कर पाठको के बीच आएगी, उस पर पाठको की क्रिया-प्रतिक्रिया बहुत स्वाभाविक है।

3

अंग्रेजी शासन एवं शासकों के प्रति भारतेन्दु-युगीन कवियों की प्रतिक्रिया

प्राय भारतेन्दु तथा उनके सहयोगियों पर राजभक्ति तथा विदेशी शासन के प्रति अनुरक्ति का दोषारोपण किया जाता है। आलोचको द्वारा उनके काव्य से चुन-चुन कर ऐसे उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं जिनमे उन्होंने सरकार द्वारा प्रदत्त सार्वजनिक सुविधाओ और सुव्यवस्थाओ का उल्लेख किया है। शासको की प्रशसा मे लिखी कुछ कविताएँ भी इस सन्दर्भ मे प्रस्तुत की जाती हैं। किन्तु सम्पूर्ण भारतेन्दु-युगीन साहित्य का अनुशीलन करने के उपरान्त जिन भावनाओ का प्राधान्य हमे इस साहित्य मे उपलब्ध होता है वह पूर्णतया विदेशी सभ्यता, शासन तथा शासको की कटु आलोचनाओ से भरपूर है। उनके साहित्य मे ऐसी रचनाएँ सर्वाधिक मात्रा मे विद्यमान हैं जिनमे देश की नसो मे विष की तरह व्याप्त विदेशी सभ्यता व विदेशी शासकों के क्रिया-कलाप के प्रति तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त हुई है। अंग्रेजी राज्य के जितने अवगुण इन साहित्यकारो की लेखनी से प्रकट हुए है, आगे के किसी भी युग के साहित्य में वे इतनी स्पष्टता और यथार्थता से अभिव्यक्त नही हो सके। अंग्रेजी शासन के प्रारम्भिक काल मे ही उनके इतने अवगुणो से परिचित हो जाना और निर्भयता से उन्हें जनता के समक्ष रख देना उन्ही के लिए सम्भव था जिनकी आत्मा अहर्निश देश के हित-चिन्तन के अतिरिक्त दूसरी बात सोच ही नहीं पाती थी। परतन्त्रता के कठोरतम काल मे अपने शासको की निन्दा से पत्र-पत्रिकाओ को भर देना उनकी राजभक्ति का प्रमाण नही है। तद्युगीन कवियो पर लगाया गया यह आरोप पवित्र सकल्पो और भारतीय भावना से परिपूरित आत्माओं को गहरी ठेस पहुँचाना है। आटे मे नमक की मात्रा से भी कम पाये जाने वाले साहित्य के आधार पर ऐसी धारणा बनाना कहाँ तक उचित कहा जा सकता है। फिर भी यदि किसी को इस का आग्रह ही हो तो 'एकोहि दोषो गुण सन्निपाते निमज्जतीन्दो किरणेष्विवाक' के अनुसार भारतेन्दु-युगीन कवियो का यह दोष दोष नही कहा जा सकता। इस युग के साहित्य मे यत्र-तत्र यत्किंचित रूप मे प्रदर्शित तथाकथित राज-भक्ति की पृष्ठभूमि मे कितने कारण रहे हैं उन पर गम्भीर सूक्ष्म

दृष्टि से विचार करने पर सहज रूप से ही इस दोष का प्रक्षालन हो जाता है। भारतेन्दु पर जिस प्रकार शृंगारिकता का बेसुरा आरोप तद्युगीन पृष्ठभूमि को जाने बिना किया जाता है इसी प्रकार उनकी राज भक्ति सम्बन्धी बात भी कही जाती है। तथ्य यह है कि देश और उसकी बहुमुखी उन्नति इस काल के कवियो का का प्रमुख लक्ष्य रही है और इसी लक्ष्य पूर्ति मे इस युग का साहित्य रचित है।

भारतेन्दु-युगीन काव्य मे अग्रेजी शासन, सभ्यता, शिक्षा और सस्कृति के प्रति प्रतिक्रिया दो रूपो मे व्यक्त हुई है। प्रथम अग्रेजी पढकर विदेशी सभ्यता का अन्धानुकरण करने वाले भारतीयो की कटु प्रताडना के रूप मे तथा द्वितीय अग्रेज शासको की रीति-नीति एव उनकी सर्वग्रासी शासन सत्ता की कठोरतम आलोचना के रूप मे। अग्रेजी राज्य मे अग्रेजी भाषा का प्रचार स्वाभाविक था किन्तु इस भाषा ने देश का जिन रूपो मे अहित किया उस पर इस काल के कवियो की दृष्टि बडे व्यापक रूप मे पडी है। अँग्रेजी के कारण देशी भाषाओ का विकास नही हो सका, लोगो मे स्वदेश और स्वदेशी चीजो के प्रति घृणा उत्पन्न हुई, जिससे देश के कला-कौशल और व्यापार को धक्का लगा, बेकारी की समस्या उत्पन्न हुई भारतीय सभ्यता और सस्कृति का मानो अवसान होने लगा।[1]

देश की राजनैतिक, आर्थिक, नैतिक स्थिति को दिन-दिन ह्रास की ओर अग्रसर देख इस काल के कवियो ने अग्रेजी शासको की तीव्र विगर्हणा की है। वे देख रहे है कि शासन मे सारे ऊँचे पद अग्रेजो को ही प्राप्त हैं। ये लोग यहाँ के निवासियो को मूर्ख बनाकर उनके अज्ञान का पूरा लाभ उठा रहे हैं। मनमाने कानून बनाकर यहाँ की प्रजा को सता रहे हैं। यह स्थिति उन्हे अत्यन्त क्षोभजनक प्रतीत होती है। अग्रेजो के ये कारनामे उन्हे कहर से कम प्रतीत नही होते:—

अग्रेजो ने कौन्ह चढाई
जज, कलक्टर, ला मजिस्टर जेते गोरा आई।
नाना भाति मशीन बनाकर करत है बहुत कमाई
हिन्द मे कहर मचाई।

1 (अ) पढ़ विद्या परदेस की बुद्धि विदेसी पाय
चाल चलन परदेस की गई इन्हें अति भाय।
ठेठ विदेसी साज सब बन्यो देस विदेश
सपने हूँ जिनमें नहीं कहुँ भारतीयता लेस।

(ब) बोल सकत हिन्दी नही अब मिलि हिन्दू लोग,
अग्रेजी भाखन करत अग्रेजी उपयोग।
भारतीय सब वस्तु सों अब ये हाथ घिनात,
हिन्दुस्तानी नाम सुनि अब ये सकुचि लजात।

इस कलियुगी अंग्रेजी राज्य में कवियों को भारत की पुरातनता विलीन होती दिखाई देती है। ब्रह्मा, शंकर, विष्णु, राधा, कृष्ण, भवानी, राम, रावण सब ने ही मानो यहाँ से चलने की तैयारी कर ली है। भीष्म, द्रोण, दुर्योधन, नारद, व्यास, गोपी, मुरली, सभी कुछ चले गए हैं। शेष रहे हैं केवल म्यूनिसपैलिटी, ऑफिस, थाना और बोतल खाना। वेद, तन्त्र, मन्त्र, पुराण, षट्दर्शन आदि के स्थान पर डारविन, मिल, शेली की पढाई शेष है और जो शेष हैं वह है —

रही सडी दुर्गंध ड्रेन की और दूध में पानी।
चेचक, हैजा, ज्वर, मलेरिया, और प्लेग निशानी।[1]

'अंग्रेज स्तोत्र' में भारतेन्दु ने अंग्रेजों की प्रशंसा जिस रूप में की है उससे यह कहना कठिन है कि इस युग के कवि अंग्रेजी राज्य को भारत के लिए वरदान मानते थे और उनके अवगुणों से पूरी तरह परिचित न थे। 'अंग्रेज स्तोत्र' की कुछ पंक्तियाँ उदाहरणार्थ यहाँ प्रस्तुत है —

"चुंगी और पुलिस तुम्हारी दोनों भुजा हैं। अमले तुम्हारे नख हैं। अन्धेर तुम्हारा पृष्ठ है और आमदनी तुम्हारा हृदय है। अतएव हे अंग्रेज! हम तुमको प्रणाम करते हैं। खजाना तुम्हारा पेट है, लालच तुम्हारी क्षुधा है, सेना तुम्हारा चरण है, खिताब तुम्हारा प्रसाद है अतएव हे विराट रूप अंग्रेज हम तुमको प्रणाम करते हैं"—

"दीक्षा दान तपस्तीर्थं ज्ञान यागादिका क्रिया।
अंग्रेजस्तव पाठस्य कला नार्हंति षोडसीम्॥
विद्यार्थी लभते विद्या धनार्थी लभते धनम्।
स्टारार्थी लभते स्टारा, मोक्षार्थी लभते गतिम्॥
एक काल-द्विकालं च त्रिकालं नित्यमुत्पठेत्।
भवपाश विनिर्मुक्त अंग्रेज लोके गच्छति॥"[2]

इस काल के गद्य एवं पद्य सभी विधाओं में अंग्रेजों के काले कारनामों का खुलकर वर्णन किया गया है। अंग्रेजों की कूटनीति का परिचय देने वाली भारतेन्दु की निम्न 'कहमुकरी' से सभी परिचित हैं —

भीतर भीतर सब रस चूसै,
हँसि हँसि के तन मन, धन मूसै।
जाहिर बातन में अति तेज,
क्यों सखि सज्जन? नहिं अंग्रेज॥[3]

'सज्जन नहिं अंग्रेज की दुहरी मार' यहाँ द्रष्टव्य है। अमला, पुलिस, अंग्रेजी, चुंगी, कानून, खिताब, शराब आदि अंग्रेजों द्वारा प्रदत्त नए विषयों पर भारतेन्दु ने

1. स्फुट कविता—बालमुकुन्द गुप्त
2. भारतेन्दु कृत 'अंग्रेज स्तोत्र'—डा॰ रामचन्द्र सिंह वर्मा, पृ॰ 32.
3. भारतेन्दु ग्रन्थावली, द्वितीय खण्ड, पृ॰ 110

बडी रसमय चुटकिया ली है। 'पच प्रपच' मे रेल, तार, डाक, घडी, चश्मा, मनी आर्डर आदि के कुपरिणामो का वर्णन है। 'वानर-चरित्र' मे डारविन साहब के सिद्धान्त पर अंग्रेजो के चरित्र की आलोचना की गई है।[1] 'श्रीमदग्रेज पुराण' मे पुराणो की कथा पद्धति पर इनकी कथा बडे रोचक एव व्यग्यात्मक ढग से प्रस्तुत की गई है। कथा के प्रारम्भ मे उनके ऐश्वर्य का गुणगान है तत्पश्चात् उसका महात्म्य कहा गया है —

प्रात नाम अंग्रेज उचारे।
इच्छा भोजन तुरतहि पावै
जो अग्रेज मुख दर्शन करें।
त्रिविध ताप वाके हरि हरै॥
जो अग्रेज करहि संवादा।
ताके वेगहि मिटहि विषादा॥
जो अग्रेज पद धूली धरै।
तुरतहि भवसागर को तरै॥
जो अंग्रेज प्रसादहि पावै।
सो बैकुण्ठ धाम को जावै।
जो अंग्रेज को डाली देवै।
सो ट्रेजरी की ताली लेवै॥
जो अंग्रेज की गाली खाए।
कभी न किस्मत खाली जाए।
जो अंग्रेज की लात सहारे।
वाको काल कबहुँ नहि मारे॥
जो नर क्रोधाविष्ट अंग्रेज हाथ मर जाय।
कल्प कल्प शत कल्प लौं स्वर्ग लोग सुख पाय॥
दस पहले दस पिछले उवरें ताके वंश।
फिर जन्म नहि होयगो बात कहत निश्शंस॥[2]

इन वर्णनो मे कवियो की तत्कालीन परिवेश के प्रति जागरूकता तथा अग्रेज और अग्रेजियत के प्रति जो भावना प्रकट हुई है उन पर किसी प्रकार की विपरीत टीका टिप्पणी करने की अपेक्षा कवियो मे कूट-कूट कर भरे देशानुराग के प्रति श्रद्धा का भाव जाग्रत होता है। भले ही ये कवि राष्ट्रोत्थान का वह व्यापक रूप प्रस्तुत करने मे समर्थ न हुए हो जो आगे के काव्य मे दृष्टिगत होता है किन्तु राष्ट्रोत्थान के उस प्रारम्भिक काल मे इतनी सजीवता और इतनी सच्चाई से तत्कालीन कटु यथार्थ को खोलकर रखना कोई सहज कार्य नही था। जागरण युग के कवियो की यह देशनिष्ठा निश्चय ही अभिनदनीय है।

---

1. भारतेन्दु पत्रिका, 11 फरवरी सन् 1884 ई०, अक 11
2. भारतेन्दु पत्रिका, 1884 ई०, 10 मई, अक 2.

4
बरसात के दिन और आधुनिक विरहिणी

बरसात के सुहाने मौसम मे जब चराचर जगत् खुशी से नाच उठता है तब कवियो के अनुसार विरहिणी नारी के दुःख का पारावार नही रहता। वह अनुभव करती है—

> जिन घर कंता वे सुखी, तिन्ह गारौं भी गर्व,
> कंत पियारा बाहिरैं, हम सुख भूला सर्व।

परदेस मे बसे प्रियतम की प्रिया को यो तो वर्ष के बारहो महीने बडे कष्टकर होते हैं किन्तु बरसात के दिन सबसे ज्यादा दुःखदायी कहे गए हैं। गर्मी की भीषण तपन और पूस माह की ठिठुरन भी वियोगिनी को कम नहीं सताती, किन्तु इन्हें किसी प्रकार वश मे तो किया जा सकता है। गर्मी मे चन्दन और सर्दी मे कम्बल का सम्बल लेकर दिन बिताए जा सकते हैं, पर बरसात मे क्या करें? बरसात मे बादल गरजेंगे, मोर नाचेंगे, कोयल कूकेगी, बिजली चमकेगी, पुरवैया बहेगी किसकी ताकत है जो इन्हे रोक ले? ये सब ही तो वियोगिनी के प्राण-लेवा हैं। सयोग मे जो वस्तुएँ सबसे अधिक सुखकर प्रतीत होती थी, वियोग मे वे ही प्राणान्तक कष्ट देने लगती हैं। बादलो की गरज और बिजली की चमक से भयभीत प्रिया प्रिय के कण्ठ लगकर अपार सुख अनुभव करती थी किन्तु प्रिय के अभाव मे बिजली की चमक तलवार की धार-सी लगती है। पपीहे की पुकार सुनकर रिमझिम बूंदो और बागो मे पडे झूलो को देखकर विरहिणी के प्राण पागल होकर भटकते हैं। जब सखियाँ प्रियतम के गले मे बाहे डालकर झूला झूलती है, तीज का मनभावन त्यौहार मनाती हैं, मेहदी, महावार और रगबिरगे वस्त्रो मे सजी खुशियाँ मनाती हैं, तो विरहिणी की आँखो से आँसू की झडी लग जाती है। उसके आँसुओ की इस झडी से बरसात के बादल भी हार जाते है।

कभी वह सोचती है कि बरसात तो प्रिय के देश मे भी आती होगी, वहाँ भी बिजली चमकती होगी, कोयल बोलती होगी, मोर नाचते होगे, सखियाँ झूला झूलती होंगी और मल्हार गाती होगी, तब क्या इन्हें देखकर प्रिय को मेरी याद नही

आती ? बरसात मे जब जड बादल भी समय पर आकर चातक की प्यास बुझा देते है, सूखे पेडो को हराकर देते हैं, मृतक मेढको को जिला देते हैं तो प्रियतम तो सरल कोमल हृदय वाले चेतन प्राणी हैं क्या उन्हे अपनी प्रियतमा की याद नही सताती ? उसकी दशा पर तरस नही आता ? जरूर किसी परदेसिन प्रिया से उन्हें प्यार हो गया है और उसी के वश मे होकर वे मुझे भूल गए हैं। वह कोयल से कहती है कि तुम उनके पास जाकर कूको, पपीहे तुम भी वहाँ जाकर पीऊ-पीऊ की रट लगाओ, बादलो तुम भी वही जाकर बरसो जिससे मेरे प्रिय को मालूम हो कि पावस ऋतु आ गई अब घर लौटना चाहिये।

कवियो द्वारा वर्णित विरहिणी की उपर्युक्त दशा आज के युग मे बहुत पुरानी और अटपटी लगती है। पहली बात तो यह कि प्रिय के वियोग मे नारी की जिस दशा का वर्णन कवियो ने किया है उसमे प्राय शारीरिक सयोग के अभाव का दुख ही वर्णित है। प्रिय का वियोग नारी को इसलिए दुखदाई है कि वह शारीरिक सुख से वचित है कवियो की यह कल्पना कुछ एकागी सी और पुरुषमन की स्थिति का आभास देती है, क्योकि काम-पीडा से किसी सद्गृहणी का ऐसा मुखरित रूप बहुत कम या नही के बराबर देखने और सुनने मे आता है। यदि इस दृष्टि से इस विषय की विवेचना न भी करें तो भी आज का जीवन इस प्रकार के विरह के सर्वथा अनुपयुक्त दिखाई देता है। आज के प्रतिपल परिवर्तित जीवन मे किसे इतना अवकाश है कि बरसात के दिनो मे प्रियतम की यादकर कोयल और पपीहे को कोसा करे या बीती बातो की याद मे बैठी आँसू बहाया करे। विज्ञान के इस युग मे बादलो की गरज और बिजली की चमक से डरने वाली कितनी नायिकायें हैं ? डरना जिनका स्वभाव है वे तो क्या सयोग, क्या वियोग, सभी में डरेंगी, किन्तु प्रिय-विरह मे डरने वाली कितनी नायिकायें हैं ? परदेश मे बसने वाले प्रियतम के देश मे वर्षा उसी समय आती है जब इस देश मे आ रही है, यह भी आज निश्चय नही रहा। जब भारत मे वर्षा ऋतु है तब अमेरिका, इगलैंड मे भी वर्षा हो, यह कहाँ सम्भव है ? और आजकल की अधिकाँश विरहिणी ऐसी है जिनके पति समुद्र पार गए हुए हैं, तब बरसात मे दुख की सहानुभूति का भी प्रश्न नही रहा।

आधुनिक युग की सबसे बडी देन है समय का अभाव और व्यस्त जीवन। आज के इस व्यस्त युग मे रोना तो दूर रहा झूला झूलने और मल्हार गाने का भी तो अवकाश नही है। कितनी ऐसी युवतियाँ आज दिखाई देती हैं जो प्रियतम के गले मे बाहे डालकर सावन मे झूला झूलती हैं ? तीज का त्यौहार मनाने के लिये भी अब सरकार छुट्टी नही करती। भरी बरसात में विरहिणी नायिकाओ को बच्चो को स्कूल भेजने की तैयारी करनी पडती है, सबसे अधिक धोबी के सकट का सामना करना पडता है क्योकि बच्चो को रोज धुले आयरन किए हुए कपड़े चाहिये। यदि स्कूल की कोई खास ड्रैस हुई तो और भी मुसीबत। रोज उन्हे धोने, सुखाने और आयरन करने का काम बढ जाता है। यदि कोई नायिका स्वय नौकरी

करती है तो मूसलाधार वर्षा में उसे दफ्तर जाना पड़ता है। कभी पिकनिक की तैयारी करनी पड़ती है। घर की खरीदारी से लेकर सबकी सार सम्हाल का काम उसी के ऊपर होता है। आज नारी की एक जान के पीछे सौ जंजाल बंधे हैं तब वह कौन सा समय निकाले, बादलों की रिमझिम और सावन की सुहानी तीज पर प्रिय का वियोग अनुभव करने या बैठकर आँसू बहाने का। बरसात आती है और चली जाती है उसे कोयल की पुकार सुनने का अवसर ही नही मिलता। ये सारे झंझट पहले जमाने की वियोगिनी के सामने नही थे इसीलिये वह लगातार तीन महीने आँसुओं की झड़ी से बादलों को हरा सकती थी और उसके लिए निसदिन पावस ऋतु बनी रहता थी। आज समय बदल गया है, स्थिति बदल गई है।

आज वैज्ञानिक साधन इतने बढ़ गए हैं कि वियोग दुःख के अनुभव का रोग लगभग समाप्त हो गया है। आधुनिक विरहिणी की वेदना वैज्ञानिक साधनों से दूर हो जाती है। एक कवि ने आधुनिक विरहिणी द्वारा पति को लिखे गए पत्र का अनुमान करके उसके कुछ अंश इस प्रकार हैं लिखे—

> जो प्यारे छुट्टी नहीं पाओ तो ये सब चीजें भिजवाओ।
> चमचम पोडर, सुन्दर सारी, लाल दुपट्टा, जर्द किनारी।
> हिन्दू बिस्कुट, साबुन पोमेटम, तेल लफाचट औ अरबीगम।
> हम तुम जिनको करते प्यार, वह तस्वीरें भेजो चार।

यद्यपि उपर्युक्त वर्णन आज की स्थिति का हास्य व्यग्यमय चित्र है जिसमे वास्तविकता कम है किन्तु इसमे संदेह नही कि आधुनिक युग मे वियोग तड़पन कम करने के लिए बहुत से साधन उपलब्ध हैं। किसी कोमल हृदया नारी को सचमुच प्रिय का वियोग बरसात में बहुत सताता हो तो उसके पास प्रिय-मिलन के अनेक साधन मौजूद हैं। वह लम्बी चिट्ठी लिखकर वियोग-वेदना कम कर लेती है। चिट्ठियाँ पहिले भी लिखी जाती थी किन्तु पत्र-वाहकों का कोई भरोसा नही था। उनके साथ भेजी चिट्ठियाँ प्रिय को मिली, या कहीं फेंक दी गईं, इनका कुछ पता नही लगता था मन तड़पन ज्यों की त्यों बनी रहती थी। यदि प्रिय पत्र का उत्तर दे भी तो आने में महीनों लग जाते थे। गोपियों ने मथुरावासी कृष्ण को कितने संदेश भेजे, कितनी पाती लिखी किन्तु पता नहीं वे कृष्ण को मिली या कुँए में फेंक दी गईं। एक का भी उत्तर नही आया। अब वह खतरा नहीं रहा। रजिस्ट्री कराने पर चिट्ठी कहीं जा ही नहीं सकती। चिट्ठी का भी डर हो तो तार द्वारा सूचना भेजी जा सकती है। टेलीफोन ट्रंककाल करके जी की लगन मिटाई जा सकती है। मौका लगे तो टेलीविजन पर दर्शन भी सम्भव है। फिर वियोग की तड़पन कहाँ ?? महाकाव्यों की परम्परा में मसान वियोग परम्परा भी अब बदलनी चाहिये। सावन की उमस भरी सावन की रजनियाँ, जब पी मन की सब सिनेमा के सैकिण्ड शो में 'कब रात बीत गई, पता ही नहीं लगता। विरहिणी और विरही

की तड़पन के गीत अब कृत्रिम प्रतीत होते हैं। वर्ष के बारहो महीने अब विरहिणी को लगभग एक समान है। बरसात मे और भी ज्यादा कामजाज रहने से उसे वियोग-वेदना और काम पीडा नही सताती। डॉ० देवराज के शब्दो मे कहना चाहती हूँ—

कविवर। क्या गाते हो ?
मधुवन के गाने ये।
प्रेम के तराने ये।
हो गए पुराने सब।
बड़े बड़े नगरो मे
दिल्ली कलकत्ता मे, कानपुर बोम्बे मे
कहाँ वह बसन्त आता जलते अनगवाला।
यज्ञ का कहाँ पावसी

एकसे हैं दिन रात।
हवा गन्ध एक रस।
एक ही प्रकाश देते बिजली के दीप प्रखर
नहीं पूनो, नहीं अमा. नहीं अभिसारिकाएँ।
अब वह वियोग कहाँ, क्लेश कहाँ
कहाँ सदेश कष्ट
चिट्ठियाँ ले उडते हैं वायुयान,
खबरें ले टेलीग्राम,
और विज्ञापन ले घूम जाते
दसों दिशाओ मे पत्र।
व्यर्थ 'मेघदूत', अनपेक्षित 'भ्रमर गीत'
ब्रज की व्यथा
आती है हँसी बहुत सुन दमयन्ती की
कल्पना कथा।
और सच पूछो तो
इस व्यस्त युग मे देश के विदेश के
लाख प्रश्नो के बीच
प्रेम के विरह के आँसू बहाने की
फुरसत ही कहाँ है ?

—'धरती और स्वर्ग' से उद्धृत

5

राष्ट्र के संगठन में भाषा का योग

भाषा किसी देश या राष्ट्र की आवाज होती है। इस आवाज मे जितना बल जितनी एकता और जितना विस्तार होता है राष्ट्र उतना ही सगठित, जीवत और सुसंस्कृत माना जाता है। भाषा की शक्ति का एक प्रत्यक्ष प्रमाण अग्रेजी भाषा है। इस भाषा ने अग्रेजो के साम्राज्य को फैलाने और दूर-दूर तक उसकी गहरी जड जमाने मे कितना सहयोग दिया इस तथ्य से कोई अपरिचित नहीं है। विश्व के एक बडे भूभाग मे फैलकर इसने अनेक देशो की भाषा और साहित्य पर तो एकच्छत्र राज्य किया ही उनकी सस्कृति और सभ्यता को भी आच्छन्न करने मे कुछ उठा नहीं रखा। बडे-बडे विद्वान् एव देशप्रेमी व्यक्तियो के मन मस्तिष्को मे यह भाषा ऐसी समाई कि वे अपनी भाषाओ को भूलकर अग्रेजी को ही राष्ट्रभाषा स्वीकार करने की पैरवी करने लगे। मैसूर राज्य के भूतपूर्व मुख्यमत्री हनुमथैया ने भारत की राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर अग्रेजी का पक्ष लेकर कहा था "आखिर हम ज्ञान और बोध चाहते हैं हमारा इससे क्या बिगडता है कि यह लाभ हमे किस भाषा से मिलता है। अग्रेजी एक ऐसी भाषा है जो हमे सब लाभ प्रदान कर सकती है। भारतीय दर्शन का निचोड जो सस्कृत पुस्तको मे निहित है कि हमे समस्त ससार को एक कुटुम्ब मानना चाहिए यदि हम उक्त दृष्टिकोण का विकास करे तो हम अग्रेजी के प्रति सहिष्णु हो सकते हैं।" इस तरह के न जाने कितने तर्क अग्रेजी भाषा को भारत की राष्ट्रभाषा स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत किए गए और अब भी किए जा रहे हैं। इन सबके विवेचन का यहाँ अवसर नही केवल उदाहरण के रूप मे भाषा की शक्ति और प्रभाव प्रस्तुत करना है।

भाषा राष्ट्र की बहुत बडी शक्ति होती है जिसके माध्यम से देश की एकता रूपायित होती है, देश को सगठित एव विकसित करने का प्रयास किया जाता है तथा शासन तत्र को सुदृढ एव स्थायी बनाने की दिशा मे सक्रिय कदम उठाए जाते हैं। इतिहास बताता है कि राज्य बदलते ही देश की भाषा बदल दी गई है क्योकि अपनी भाषा के बिना कोई सशक्त से सशक्त शासक किसी देश पर प्रभुतापूर्वक शासन करने मे समर्थ एव सफल नही हो पाता। मुगल शासन मे भारत की राजभाषा फारसी थी

और अंग्रेजी राज्य मे अंग्रेजी, किन्तु स्वतत्र भारत मे देश की भाषा को राजभाषा या सम्पर्क भाषा के रूप मे व्यवहृत एव प्रतिष्ठित करने मे हमारे देश के शासकगण इसलिए आनाकानी कर रहे है कि उससे शासन की क्षमता कम हो जाएगी, देश बिखर जाएगा, सुसस्कृत और आधुनिक नही कहलाएगा. इससे अधिक आश्चर्य की और क्या बात हो सकती है ? ससार के छोटे-छोटे देश अपनी भाषा के बल पर बडे-बडे समर्थ एव ज्ञान-विज्ञान मे अग्रणी देशो से टक्कर ले रहे है और हम विदेशी भाषा के प्रयोग पर गर्व करते हुए देश की उन्नति एव विकास के स्वप्न देख रहे है देश का यह दुर्भाग्य ही है।

देश की भाषा नीति की डाँवाडोल स्थिति के कारण देश की एकता एव विकास की कितनी क्षति हुई है इसका अनुमान देश की वर्तमान परिस्थितियो मे सहज ही लगाया जा सकता है। आज देश मे चारो ओर गुटबन्दी है, स्वार्थ भरी राजनीति है, प्रान्तीयता के सकुचित दायरे है, सम्प्रदायवाद, जातिवाद और भाषावाद का तेजी से फैलता विष है और न जाने कितने प्रकार की दुरभिसधियाँ है जो मिलकर इस देश की एकता को खडित करने मे अग्रसर है। एक ओर अंग्रेजी भाषाविद् वह थोडा सा वर्ग है जो अपनी रोटी-रोजी शासन और सत्ता की भूख को मिटाने के लिए देश की भाषा और सस्कृति की जड काट रहा है। उसकी दृष्टि मे हिन्दी, हिन्दुस्तान और प्रत्येक देशी वस्तु तुच्छ और महत्त्वहीन है। इस वर्ग को देश की समृद्धि की अपेक्षा अपनी समृद्धि प्रिय है। देश के विकास को रोकने मे और वर्ग विषमता फैलाने मे अंग्रेजी और अंग्रेजी दाँ सर्वाधिक उत्तरदायी है। किन्तु आश्चर्य यह है कि यही वर्ग आज देश के सब उच्च पदो पर आसीन है। इस वर्ग को स्वतन्त्रता के सारे सुख उपलब्ध है सारा देश इनसे शासित है। दूसरी ओर हिन्दी भाषी वह विशाल वर्ग है जो देश की गरीबी और दुर्भाग्य का प्रतीक है जिसे चपरासी की नौकरी पाने के लिए भी मन्त्रियो की सिफारिश की आवश्यकता पडती है। पेट भर रोटी न पाने वाला यह वर्ग स्वतत्रता को सौभाग्य मानकर उसकी पूजा करेगा या उसके शीघ्र बदलने या उखडने की माला जपेगा ? तीस वर्ष की स्वतत्रता ने सविधान स्वीकृत राष्ट्रभाषा के गौरव एव स्वाभिमान का इस सीमा तक हनन किया है कि आज हिन्दी बेबसी, गरीबी, हीनता एव पिछडेपन का पर्याय बन गई है। तीसरी ओर प्रान्तीय राजनीति देश की एकता व राष्ट्रभाषा की लाश पर प्रान्तीय भाषाओ को बढावा देकर स्वार्थ-पूर्ति के साधन जुटाने मे सलग्न है। देश की एकता की किसे चिन्ता है ? सब ओर देश मे बिखराव की स्थिति है किन्तु शासक है कि बिखराव की इस बढती हुई बाढ को कच्ची मिट्टी के बाँध से रोकने का प्रयत्न कर रहे है। एकता का ब्रह्मास्त्र (भाषा) टूटा पडा है और हम किराए की भीड इकट्ठी कर रैलियो द्वारा एकता का सार्वजनिक प्रदर्शन कर रहे है। भाषणो और नारो का रस पिलाकर एकता की आवाज बुलन्द कर रहे है। सुविधाओ के कुछ टुकडे डालकर विरोध की अग्नि प्रशमित कर रहे है। विकास की दृष्टि से देखे तो भी एक भाषा नीति के अभाव मे या अंग्रेजी के अत्यधिक मोह मे देश की सारी योजनाएँ चौपट हुई जा रही है। अंग्रेजी के माध्यम से देश की

विकास योजनाओ का प्रचार और प्रसार 'अंधे के आगे रोवे अपने नैंना खोवें' की कहावत सार्थक कर रहा है। देश के 70% अशिक्षित ग्रामवासी न साहबी ठाठ से परिचित हैं न साहबी भाषा से, वे मौन मूक होकर इन योजनाओ को फिल्मी तमाशे की तरह देखते हैं जिनसे मनोरजन तो हो सकता है विकास नहीं। देश का मौलिक चिन्तन, अपनी भाषा के बिना गूंगा है और देश का यान्त्रिक विकास पगु। नए राष्ट्र का नया उत्साह अपनी भाषा के बिना दम तोड रहा है। नवयुवको की सारी शक्ति, शिक्षा और सस्कृति के केन्द्र विश्व विद्यालयो का स्वरूप मिटाने मे सलग्न हैं, उनके पास न ज्ञान है, न भाषा है और न देश के विकास का कोई स्वप्न, केवल तोड-फोड है, विद्रोह की धधकती अग्नि है और स्वतत्र राष्ट्र के स्वाभिमान को चूर्ण करने की शक्ति।

ऐसी स्थिति मे एकता और सगठन के लिए, स्वतत्र राष्ट्र के स्वाभिमान एव स्वरूप रक्षा के लिए यथाशीघ्र देश मे राष्ट्र की एक भाषा के प्रचार और प्रसार के क्रान्तिकारी प्रयास आवश्यक है। भाषा की एकता के बिना देश की एकता और विकास का स्वप्न चाहे बडे-बडे राजनीतिज्ञ देखते हो या बडे-बडे ज्ञानी और दूरदर्शी विद्वान्, किन्तु यह दिवास्वप्न से अधिक नही है। दूसरे की भाषा अपनाने से हृदय की कसक नही मिटती, स्वतत्र चिन्तन नही होता, देश का विकास नही होता। यदि हम चाहते हैं कि देश मे आत्म-गौरव की भावना जगे, अपने पैरो पर खडे होने की क्षमता बढे, एकता, समानता, भ्रातृत्व का विकास हो, राष्ट्र के शासन में दृढता और स्थायित्व आए, विदेशो मे साख बढे, तो देश की सरकार को, देश की जनता को राष्ट्रभाषा के प्रश्न को यथाशीघ्र सुलझाने, उसका व्यापक प्रचार एव प्रसार करने के लिए तत्पर हो जाना चाहिए। हिन्दी हिन्दुस्तान का गौरव है, राष्ट्र की एकता का प्रतीक है उसके माध्यम से ही देश मे विकास की महती सभावनाएँ हैं। न केवल देश मे, विदेश में भी भारत की राष्ट्र भाषा हिन्दी का सम्मान बढे इसके लिए हमें प्रयत्नशील रहना चाहिए। भाषा की शक्ति की जो बात प्रारम्भ मे कही जा चुकी है, उस ओर राष्ट्र का ध्यान जाना चाहिए। समय बहुत बीत चुका है यदि अब भी हमारी आँखें न खुली तो देश के भविष्य का ईश्वर ही रक्षक है।

हिन्दी मे राष्ट्र की आवाज और राष्ट्र की शक्ति बनने की क्षमता है या नही, अब इस प्रश्न पर विचार करने का समय नही है। भारत के स्वतत्रता सग्राम में वह अपनी अग्नि परीक्षा दे चुकी है जिनके कारण राष्ट्र प्रेमियो ने उसे एकमत होकर सविधान मे राष्ट्र भाषा का महत्त्वपूर्ण पद प्रदान किया है।

6

'हिन्दी दिवस' या हिन्दी की हिन्दी

प्रति वर्ष चौदह सितम्बर को 'हिन्दी-दिवस' मनाया जाता है। प्रति वर्ष मैं सोचती हूँ कि क्या विश्व मे कोई और भी देश ऐसा है जो अपनी राष्ट्र भापा के प्रचार के लिए कोई 'भापा दिवस' मनाता हो और वह भी एक दो वर्ष तक नही लगातार तीस वर्षो तक। सविधान स्वीकृत राष्ट्रभापा हिन्दी का अपनी मान्यता के तीस वर्ष वाद तक 'हिन्दी-दिवस' के रूप मे मनाया जाना क्या हिन्दी प्रेमियो अथवा राज्य के अधिकारियो को कुछ अटपटा और लज्जाजनक नही प्रतीत होता? लगता है हिन्दी-दिवस' मना कर हम 'हिन्दी की हिन्दी' (यह एक नया मुहावरा बना है जो किसी की शान के खिलाफ कार्य करने या नीचा दिखाने के अर्थ मे प्रयुक्त होने लगा है) कर रहे हैं। 'हिन्दी-दिवस पर कुछ हिन्दी भापी राज्यो मे कुछ हिन्दी प्रेमी एकत्र होकर हिन्दी के प्रति जनता के कर्त्तव्य की तथा सरकारी उपेक्षा की बात दुहराकर हिन्दी के भाल पर तिलक चन्दन चर्चित कर देते है और वर्ष भर उससे आनन्दित होते हैं। क्या 'राष्ट्रभापा' का यह उचित सम्मान है? क्या इससे किसी उद्देश्य की पूर्ति होती हमे प्रतीत होती है? तीस वर्ष की अवधि कोई इतनी छोटी अवधि तो नही है जो पलक मारते वीत गई हो और हम हिन्दी को उसका उचित सम्मान एव स्थान दिलाने मे असमर्थ रहे हो? वारह वर्ष मे कुम्भकर्ण की नीद भी खुल जाती थी। भगवान राम को उनके राज्य सिहासन के आदेश के साथ ही चौदह वर्ष के वनवास का आदेश मिला था। अयोध्या की जनता पर और राज्य परिवार पर इस आदेश से मानो पहाड टूट पडा था। चौदह वर्ष का समय उन्हें इतना लम्वा प्रतीत हुआ था जैसे राम को विना देखे युग वीत गए हो? राजा दशरथ ने तो उनके विरह मे प्राण त्याग दिए थे। हिन्दी को राजसिहासन का आदेश मिलते ही वनवास मिल गया और आज तीस वर्ष वीत गए किन्तु देशवासी अभी उसके राजसिहासन के आदेश की स्मृति मे ही प्रसन्न है। वनवास से उसकी वापसी के लिए न कही किसी मे अयोध्या वासियो की सी वेचैनी है और न उत्कट वेदना। लगता है चौदह सितम्बर हिन्दी की वह पुण्य तिथि है जो 'स्मृति-दिवस' के रूप मे उसी तरह मनाई जाती है जिस तरह किसी पुण्यात्मा का 'निर्वाण दिवस'। ज्यो-ज्यो

निर्वाण का समय 'दीर्घ से दीर्घतर और दीर्घतम' होता जाता है त्यो-त्यो उसकी आस्था एव स्मृति मस्तिष्क मे धु घली होती जाती है। 'हिन्दी-दिवस' का आकर्षण और महत्त्व अब दिन दिन क्षीण हो रहा है अत अब इसे और अधिक मनाकर 'हिन्दी की हिन्दी' नही करनी चाहिए। यदि तीस वर्षो मे हम ध्येय की पूर्ति नही कर सके तो हमारा 'हिन्दी दिवस' मनाना व्यर्थ है, और यदि इसके माध्यम से हमने सफलता पा ली है तो इसे मनाना अब विशेष उपादेय नही है। दोनो दृष्टियो से इस दिशा मे पुर्नाविचार की आवश्यकता है। 'पूत सपूत तो क्यों धन सचै, पूत कपूत तो क्यों धन सचै' वाली कहावत बडी सटीक मालूम होती है। यदि हिन्दी मे राष्ट्रभाषा होने की क्षमता और योग्यता है तो उसे किसी 'दिवस विशेष' की आवश्यकता नही है और यदि वह इस भार-वहन के लिए असमर्थ है या अयोग्य है तो लाख बार 'हिन्दी-दिवस' मनाइये वह टस से मस नहीं होगी।

आज तक हिन्दी अपनी सामर्थ्य से लोकप्रिय है। उसे जनता का विश्वास और स्नेह प्राप्त है। उसी के बल पर वह बडी-बडी शक्तियो से टक्कर ले रही है, उसे अपदस्थ करने के चाहे कितने ही प्रयत्न क्यो न किए जाएँ यह वह 'भागीरथी' है जो एक बार अपने गन्तव्य से चलकर पीछे लौटना नही जानती। जहाँ-जहाँ बहेगी अपने अचल मे सारे कलुप को समेटकर 'स्वय पवित्र' सिद्ध होगी और सागर का विशाल रूप धारण करेगी। यह मेरा विश्वास है। व्यवहार मे दैनिक कार्यों में बोल चाल में हिन्दी की प्रतिष्ठा कीजिए हिन्दी स्वय प्रतिष्ठित होगी उसे किसी 'दिवस' में बाँध कर उसके गौरव की सीमा मत बाँधिए।

7

'मानस' की कैकेयी–एक पुनर्मूल्यांकन

तुलसी का रामचरित मानस विद्वत् समाज और सामान्य जनता दोनों मे समान रूप से आदृत एवं लोकप्रिय काव्य है। इस एक ग्रन्थ मे कवि ने एक साथ इतने विविध आदर्शों एवं चरित्रों की अवतारणा की है कि समाज के प्रत्येक वर्ग के पाठक को इसमे अपने उपयुक्त सामग्री मिल जाती है। सम्भवत इसी एक विशेषता ने तुलसी को विश्वकवि और रामचरित मानस को विश्वकाव्य जैसे उच्चतम गौरव का भागी बना दिया है।

रामचरित मानस की पात्र-योजना मे तुलसी की कल्पना और सूझबूझ अनूठी हैं। इसका एक-एक पात्र मानव-प्रकृति के सूक्ष्म परिज्ञान की खुली पुस्तक है। घर परिवार से वियुक्त तुलसी ने अनुभव की न जाने किस पाठशाला मे बैठकर अपने पात्रो की प्रकृति का ऐसा यथातथ्य अध्ययन किया है। प्रज्ञाचक्षु सूर की बाल-लीलाएँ पढकर साहित्य जगत् आश्चर्यचकित होता है, किन्तु रामचरित मानस मे तुलसी की पात्र-योजना उससे कम आश्चर्य का विषय नही है। मानस के पात्रो के पारिवारिक मधुर सम्बन्धो और जीवन के यथार्थ रूपो को देखकर कौन अनुमान लगा सकता है कि इसके लेखक को जन्म से मरण तक कभी किसी भी सुखी परिवार मे रहने का सौभाग्य नही मिला। दर-दर भटकने वाला, भूखे पेट किसी मन्दिर या मस्जिद की सीढियो पर रात बिताने वाला, आवास-निवास विहीन एक तिरस्कृत उपेक्षित निरीह प्राणी रामचरित मानस जैसे उदात्त भव्य काव्य का रचयिता है, यह क्या कम आश्चर्य है? यद्यपि रामायण की कथा पुरानी है तद्वत् उसके पात्र भी पुराने हैं किन्तु तुलसी ने उसी कथा में और उन्ही पात्रो मे जो नवजीवन सचार किया है उसने वाल्मीकि और कालिदास जैसे रामकथाकार कवियो को भी पीछे छोड दिया है। रामचरित मानस आज घर-घर मे वेद की भाँति पवित्र और गीता की भाँति पूजास्पद माना जाता है।

कैकेयी रामायण का बहुत महत्त्वपूर्ण पात्र है क्योकि रामकथा के विकास मे उसका चरित्र मूल कारण रहा है। न कैकेयी राजा दशरथ से वरदान माँगती, न

राम को वनवास होता और न कथा का विस्तार होता। राज्याभिषेक के बाद राम राजा होते और सीता राजरानी, बस कथा यही समाप्त हो जाती। ऐसी स्थिति मे राम जैसे मर्यादा पुरुषोत्तम पुरुष, सीता जैसी आदर्श नारी, भरत और लक्ष्मण जैसे आदर्श भाई और हनुमान जैसे आदर्श सेवक के चरित्रो से विश्व अपरिचित रह जाता। राम वनवास की घटना से ही रामायण के पात्रो का इतना दिव्य उदात्त चरित्र विकसित हो सका, इसका श्रेय कैकेयी को है।

राम कथाकार कवियो ने अपने-अपने ढग से कैकेयी का चरित्र-चित्रण किया है। किसी ने उसके रूपगर्विता प्रमदा रूप को, किसी ने उसके सौतिया डाह को और किसी ने उसके मातृत्व पक्ष को उभार कर राम वनवास की घटना को स्वरूप देने की चेष्टा की है। यद्यपि नारी मे उक्त तीनो तत्त्व न्यूनाधिक रूप मे विद्यमान रहते हैं और किसी समय उसका कोई भी रूप प्रबल हो सकता है, किन्तु मनुष्य प्रकृति के परम पारखी तुलसी ने कैकेयी के सपत्नी भाव को विशेष महत्त्व देकर उसके चरित्र का विकास किया है। इसमे सन्देह नही कि कैकेयी के चरित्र-चित्रण मे तुलसी को पाठको का कोपभाजन होना पडा है जिसका परिष्कार मैथिलीशरण गुप्त ने मनोविज्ञान के आधार पर कैकेयी के मातृभाव को उभार कर किया है किन्तु तनिक सूक्ष्म दृष्टि से तुलसी की कैकेयी का चरित्र अध्ययन करने पर तुलसी के व्यापक दृष्टिकोण का और नारी के प्रति उनके सम्मान का परिचय मिल सकता है। राम जैसे सुशील परिवार पुरजन प्रिय पुत्र को वनवास की आज्ञा जैसे कठोर कार्य के लिए जितने कठोर चरित्र की आवश्यकता थी तुलसी ने कैकेयी के चरित्र मे उसकी नियोजना बडी सफलतापूर्वक की है। वे जानते हैं कि सपत्नी द्वेष कितना भयकर होता है, इसके आवेश मे नारी अपने पति और पुत्र को भी छोड सकती है। बदला लेने की उत्कट प्रतिज्ञा नारी के इसी रूप मे सम्भव है फलत तुलसी ने बडे दृढ आधार पर कैकेयी को दो वरदान माँगने के लिए विवश किया है। मातृत्व पर ठेस लगने से भरत को राज्य तिलक माँगने की बात तो ठीक है किन्तु इससे राम को चौदह वर्ष वनवास देने की बात बहुत उपयुक्त प्रतीत नहीं होती। कौशल्या से बदला लेने के लिए कैकेयी को दूसरे वरदान की आवश्यकता पडी है। सौतिया डाह इस परिप्रेक्ष्य मे बडा ही सशक्त कारण है। इसके अतिरिक्त एक और दृष्टि भी इसके पीछे रही है। रामराज्य में एक पत्नीव्रत के जिस आदर्श की स्थापना तुलसी का ध्येय था उसके लिए बहु-पत्नी प्रथा का ऐसा दुष्परिणाम दिखाना वे आवश्यक समझते थे। एक राजा की तीन रानियो के कारण सूर्यवश की पवित्रता मे जो कलक की कालिमा लगी उसका परिष्कार इसी चरित्र के द्वारा सम्भव था। अप्रत्यक्ष रूप मे यह तुलसी की नारी के प्रति सहानुभूति का ही परिणाम है।

तुलसी की कैकेयी स्वभाव से ही दुष्ट और कुटिल नही है। उसके प्रति तुलसी के मन मे कोई दुर्भावना नही है। राम-परिवार का कोई पात्र इतना दुष्कर्मी और स्वार्थी हो तुलसी की सहज प्रकृति इसे स्वीकार नही करती। वे दासी मथरा

को भी इस दोष का मूल कारण नही मानते । 'गई गिरामति फेर' की कल्पना तुलसी की ऐसी मौलिक कल्पना है जो मनुष्य के पवित्र आचरण मे उनके अटल विश्वास की द्योतक है । तुलसी की दृष्टि मे स्वर्ग के देवता मनुष्य की अपेक्षा कही अधिक स्वार्थी और कुचक्री हैं। वे रहते तो बडे ऊँचे-ऊँचे स्थानो पर हैं परन्तु उनके कारनामे बडे नीच होते हैं । वे दूसरो का सुख वैभव नही देख पाते—

ऊँच निवास नीच करतूती । देख न सकइ पराइ विभूति ।

मथरा इन्ही कुचक्री देवताओ का ग्रास बनकर रामकथा का सबसे घृणित कार्य करने मे तत्पर हुई है और उसी की शिक्षा से कैकेयी को राम वनवास के क्रूर कर्म का निमित्त होना पडा है । प्रारम्भ मे तुलसी ने कैकेयी के चरित्र को बडा सरल, निष्कपट और आदर्श चित्रित किया है । वह आसानी से किसी की बातो मे आने वाली नही है । मथरा अपने कार्य की सफलता के लिए कभी राम का राज्यतिलक, कभी कौशल्या का सुख और कभी पुत्र के परदेश होने की बात चलाकर कैकेयी का हृदय टटोलती है, किन्तु कैकेयी इन सब बातो से व्याकुल होने की अपेक्षा मथरा के ऊपर ही बरस पड़ती है, तुलसी कहते हैं—

सुनि प्रिय वचन मलिन मन जानी । झुकी रानि अब रहु अरगानी ।
पुनि अस कबहुँ कहसि घर फोरी । तब धरि जीभ कढावहु तोरी ।।

इसमे अधिक कैकेयी के सरल हृदय की और परिवार के प्रति उसके अमित प्रेम की और क्या पहचान होगी ? उसके लिए वह दिन सबसे शुभ और मगलदायक होगा जिस दिन राम को राज्यतिलक होगा—

सुदिन सुमगलदायक सोई । तोर कहा फुर जेहि दिन होई ।
जेठ स्वामि सेवक लघु भाई । यह दिनकर कुलरीति सुहाई ।
राम तिलक जो साचेहु काली । देउ मागु मन भावत आली ।

कैकेयी कुल की परम्परा जानती है । राम और कौशल्या के प्रति उसके मन मे कोई दुर्भावना नही है । वह राम को भरत से अधिक प्यार करती है । उसकी एकमात्र इच्छा है कि यदि विधाता उसे फिर जन्म दे तो उसे राम जैसा पुत्र और सीता जैसी पुत्रवधू प्राप्त हो । कैकेयी का ऐसा उदार चरित्र दिखाकर तुलसी ने राम वनवास की दारुण घटना के लिए जिस मानवीय आधार पर कैकेयी के चरित्र मे कठोरता दिखाई है उससे किसी को तुलसी की नारी भावना पर आक्रोश नही होना चाहिए । बेचारी कैकेयी कितने दुष्चक्रो मे फँसकर ऐसा दुष्कर्म कर बैठी इसका उसे जन्मभर पश्चाताप रहा । पुत्र से क्षमा माँगना इक्ष्वाकुवश की उज्ज्वल परम्परा के और कैकेयी की स्वाभिमानी प्रकृति के अनुकूल नही था । फलत तुलसी ने उस मर्यादा को न तोडकर स्वय कैकेयी को परिताप की अग्नि मे तपाया है । जब मथरा तरह-तरह के जाल फैलाकर उससे कहती है—

रेख खँचाइ कहहु बलभाषी। भामिनि भइहु दूध की माखी।
जो सुत सहित करहु सेवकाई। तौ घर रहहु न आनि उपाई।
कद्रू बनतहि दीन्ह दुःख तुम्हहि कौसिला देब।
भरत बंदिगृह सेइहहिं लखन राम के नेव।

तब कैकेयी डर के मारे सूख जाती है। उसके मुख से आवाज नही निकलती शरीर से पसीना छूट जाता है। सोचती है मैंने अपने जान मे कभी किसी का अनहित नही किया। भगवान ने किस दोष की सजा मुझे दी है। सहसा उसका सपत्नी भाव विकट रूप धारण कर लेता है और वह कहती है—

नैहर जनमु भरब बरु जाई। जियत न करब सवति सेवकाई।
अरिबस दैव जिआवत जाही। मरनु नीक तेहि जीवन चाही।

मर जाऊँगी पर सौत की सेवा नहीं करूँगी। इस समय कैकेयी का कठोर रूप परिस्थिति के सर्वथा उपयुक्त है। राजा जब उसके वरदान माँगने पर असमजस प्रकट करते हैं तो वह बड़े उग्ररूप मे राजा को चुनौती देती है—

जो अंतहु अस करतब रहेऊ। मागु मागु तुम्ह केहिबल कहेऊ।
दुई कि होइ एक समय भुआला। हँसब ठठाइ फुलाइब गाला।

या तो वचन देने की बात नही करते और दिया है तो उसे पूरा करने की सामर्थ्य रखिए। स्त्रियोचित कातरता दिखाना कहाँ तक उचित है? इस समय कैकेयी की जीभ धनुष बन गई थी जिससे वचन रूपी तीर निकल रहे थे और राजा दशरथ उसका निशाना थे। तुलसी कहते हैं—

जनु कठोरपनु धरे सरीरू। सिखइ धनुष विद्या बर बीरू।

इस भाँति कैकेयी के दो रूपो को पाठको के समक्ष रख तुलसी ने मानव-प्रकृति के दो बहुत यथार्थ रूपो को चित्रित करने की चेष्टा की है। कैकेयी के चरित्र-चित्रण मे तुलसी का लक्ष्य दुहरा है। एक ओर वे यथार्थ के आधार पर उसके चरित्र का उद्घाटन करते हैं दूसरी ओर वे बराबर उसके आदर्श चरित्र की रक्षा पर तत्पर रहते हैं। सारे कुकृत्य मे वे कैकेयी का कोई दोष नही मानते, यह कुसगति का फल था जो कैकेयी के स्वभाव मे ऐसा परिवर्तन हुआ—

को न कुसंगति पाइ नसाई। रहइ न नीच मते चतुराई।

मंथरा का विश्वास और उसकी शिक्षा ने कैकेयी की सारी चतुरता हर ली। जो कुसगति करेगा उसे उसका फल भोगना होगा। देवता निरन्तर मनुष्य की घात मे लगे रहते है। वे मनुष्य के सत्कार्यो मे सदा विघ्न डालते हैं। कोई मनुष्य स्वभाव से बुरा नहीं होता। कैकेयी इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।

8

आधुनिक यन्त्र सभ्यता और हिन्दी कवि

बीसवी सदी मे हमारी यंत्र सभ्यता अपने पूर्ण परिपाक पर है। आज विश्व की प्रधान सभ्यता बिजली, टेलीफोन, रेडियो टेलीविजन और हवाई जहाज की सभ्यता है। विज्ञान ने मानव के लिए इतने भौतिक सुख-साधन उपस्थित कर दिए हैं कि विश्व का वर्तमान वैभव-विलास और सभ्यता परस्पर बिम्ब-प्रतिबिम्ब बन कर एक दूसरे के पूरक बन गए हैं। यही कारण है कि आधुनिकतम वैज्ञानिक साधनो से वियुक्त राष्ट्र व देश सभ्यता की दृष्टि से अनुन्नत और असभ्य समझे जा रहे हैं। जीवन के लिए परम उपयोगी आधुनिक भौतिक साधनो से विहीन ग्राम हमे सभ्यता और संस्कृति से शून्य दिखाई देते हैं। बिजली के प्रकाश से शून्य ऊँचे-ऊँचे विशाल भवन उसी प्रकार भयावह प्रतीत होते हैं जिस प्रकार प्राण-रहित मानव-शरीर। वायुयानो के युग मे पाँवो के बल पर चलता मनुष्य बड़ा बौना दिखाई देता है। यंत्र संचालित पानी के नलो का अभाव जीवन का इतना बड़ा अभाव बन गया है कि उसकी अनुपस्थिति मे जीवन शून्य प्रतीत होता है। सिनेमा घर और बिजली से वियुक्त नगर व ग्राम प्रिय से उपेक्षित चिर-विरहिणी के समान उदास और उजड़े हुए से मालूम होते हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि हम पूर्ण रूप से यंत्र युग मे साँस ले रहे हैं और ऐसे यंत्र संचालित जीवन को मानव संस्कृति का चरम लक्ष्य समझ कर दिन प्रतिदिन उसके विकास मे सहयोग दे रहे हैं। जो देश आज की यंत्र सभ्यता से अनियंत्रित है वे न केवल विश्व की दृष्टि मे अपितु स्वयं अपनी ही दृष्टि मे निर्जीव और असभ्य बने हुए है।

सभ्यता, संस्कृति और सजीवता की उपर्युक्त कसौटी आकर्षक अवश्य है किन्तु कुछ दूरदर्शी, मानवता के सच्चे हितैषी और मनीषी विचारको के भावमय जगत मे आज की संस्कृति और विश्व का यह रूप कुछ दूसरा स्वरूप धारण किए हुए है। उनके विचार मे आज की यंत्र सभ्यता मे मनुष्य निर्जीव और हृदय की धड़कनो से शून्य होता जा रहा है। विश्व मे राग-द्वेष और वासनाओं का विस्तार हो रहा है, मानवता विनष्ट हो रही है।

साहित्य, जो मानव-संस्कृति के विकास में सदैव योग देता आया है और मानवीय भावों तथा गुणों की सुरक्षा का उत्तरदायित्व सम्भालता है, आज की स्थिति में विशेष रूप से सजग दिखाई देता है। हिन्दी साहित्य के अधिकांश कवि और लेखक आधुनिक वैज्ञानिक-सभ्यता के विकास से चिन्तित हैं और यथासम्भव इसका विरोध करते दिखाई देते हैं।

कवि, द्रष्टा और स्रष्टा दो महत्त्वपूर्ण पदों पर एक साथ आसीन होता है। वह अलौकिक प्राणी है। विश्व में व्याप्त समस्याओं को वह अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक गहन और सूक्ष्म दृष्टि से देखता है और उसी के अनुरूप बड़ी उदात्त भूमि पर बैठकर उनका आवश्यक समाधान उपस्थित करता है। आज के आग्नेय युग में मानव-संस्कृति को विनाश की ओर जाते देख हिन्दी कवियों ने वर्तमान वैज्ञानिक-सभ्यता पर अपना दृष्टिकोण इस प्रकार प्रस्तुत किया है

> "भौतिकता लोहे के निर्मम चरण बढ़ाकर,
> रौंद रही मानव आत्मा को।"

बात वस्तुत. ऐसी ही है। आज की अनेक वैज्ञानिक सुविधाएँ मानव के सुख स्वास्थ्य की विनाशक, भोगलिप्सा की परिचायक और हृदय के कोमल भावों की विध्वंसक सिद्ध हो रही हैं। भौतिक साधनों की सम्पन्नता में मनुष्य का हृदय और शरीर दोनों ही इतने जर्जर हो गए हैं कि मानवता की नींव डगमगाने लगी है। शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से देखें तो वैज्ञानिक युग का उन्नत मनुष्य पहले की अपेक्षा अधिक दुर्बल, अपंग और पराश्रित बन गया है। वह स्वावलम्बन खो बैठा है। आटा पीसने के एक छोटे से यंत्र ने कितने रोगों को जन्म दिया है इसे हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि भगवतीचरण वर्मा के दृष्टिकोण से देखिए—

> "गाँवों में घुस गई आटा की चक्की
> उसी तरह जैसे घाँड ट्रक रोड पक्की।
> नष्ट हो गया स्वास्थ्य अपच कुपच विसूचिका
> कितने संक्रामक रोग ग्राम-ग्राम पुरवा-पुरवा।
> घर-घर, झोंपड़े-झोंपड़े व्याप्त हो गए॥"

इसके अतिरिक्त रेल-मोटर वायुयान आदि वैज्ञानिक यंत्र मनुष्यों के लिए आराम-प्रद होते हुए भी अधिक मात्रा में संहारक ही सिद्ध हो रहे हैं। वर्मा जी कहते हैं—

> "रेलें चलती हैं, गिर पड़ते हैं वायुयान
> और मानवों के प्राण हो जाते हैं नश्वर शरीर से दूर।
> वैज्ञानिक विनाश घातक है॥"

इसमें संदेह नहीं कि विज्ञान की विस्तृत सम्पन्नता से मानव ने विद्युत, भाप, [illegible], देशकाल की दूरी सबके ऊपर विजय प्राप्त कर ली है। पृथ्वी का [illegible] वैभव उसके समक्ष मुट्ठी [illegible] है। प्रकृति मनुष्य के इशारों पर नाचती है।

किन्तु इस नि सीम प्रगति और अपूर्व विकास मे मानव का मस्तिष्क प्रदेश ही बढा है, हृदय देश सूना पडा है। कवि दिनकर ने लिखा है—

किन्तु, है बढता गया मस्तिष्क ही नि शेष,
छूट कर पीछे गया है, रह हृदय का देश।
नर मनाता नित्य नूतन बुद्धि का त्यौहार,
प्राण मे करते दु खी हो देवता चीत्कार।

बुद्धि की विजय मे सदैव सघर्ष और अधिकारो की पुकार तीव्र हो जाती है, वासना, लिप्सा बढ जाती है। सहारक तत्त्वो का विकास होने लगता है। पारस्परिक सौहार्द्र नष्ट होकर मनमुटाव और तनाव बढने लगता है। ईर्षा द्वेष आदि अवांछनीय गुणो की मानव-समाज मे वृद्धि होती जाती है। आज विश्व मे अणु, परमाणु, उद्‌जन बमो का आविष्कार इसका ज्वलन्त प्रमाण है। नित्य नवीन आकांक्षाएँ जन्म लेती हैं और नित्य नवीन समस्याओ मे उलझा हुआ मानव मनुष्यता की उच्चकोटि से गिरकर दानवता की राह पर बढता जाता है।

जीवन को मधुर और आनन्दमय बनाने का उत्तरदायी साहित्यकार इस विषम परिस्थिति से मानव-सस्कृति का परित्राण करना चाहता है। वह ज्ञान की सूखी मरुभूमि में कोमल भावो की धारा बहाना चाहता है जो कि मानव का सच्चा सुख और सच्चा श्रेय है। कामायनी मे मनु के ज्ञानदग्ध, स्नेह शून्य जीवन मे आशा, विश्वास और ममता का सचार तभी होता है जब श्रद्धा उसके समीप बैठ कर मधुर स्वर मे गाती है—

तुमुल कोलाहल कलह मे,
मैं हृदय की बात रे मन।
जहाँ मरु ज्वाला धधकती, चातकी कन को तरसती,
उन्हीं जीवनघाटियो की, मैं सरस बरसात रे मन।
पवन की प्राचीर मे रुक, जला जीवन जी रहा झुक,
इस झुलसते विश्व दिन की, मैं कुसुम ऋतु रात रे मन।

यत्र सचालित बुद्धिजीवी आज के युग मे कवि प्रसाद की कामायनी वस्तुत एक अद्‌भुत अमरलोक का सुन्दर वातावरण उपस्थित करती है। वह झुलसे हुए मानव-जीवन मे अमर अनुराग की अजस्र वर्षा है। विश्व के लिए उपयुक्त नवीन सभ्यता और सस्कृति की प्रेरणा स्रोत है।

भावना शून्य यान्त्रिक युग की कविवर दिनकर ने बडी तीव्र भर्त्सना की है। वे विद्या और बुद्धि के आधुनिक विकास को विश्वदाहक, मृत्युग्राहक, ज्ञान का अभिशाप घोषित करते है। वे कहते है—

यह मनुज जो ज्ञान का आगार,
यह मनुज जो सृष्टि का शृंगार।

नाम सुन भूलो नहीं, सोचो विचारो कृत्य,
यह मनुज संहार सेवी, वासना का नृत्य।
छद्म इसकी कल्पना पाखण्ड इसका ज्ञान,
यह मनुष्य मनुष्यता का घोरतम अपमान।

आज की जीवित मानव सस्कृति का खोखलापन चारो ओर दिखाई दे रहा है। जिन तत्त्वो पर मानवता का विकास होता है वे मनुष्य से छिनते जा रहे हैं। विज्ञान ने मनुष्य का सर्वापहरण कर लिया है। सुमित्रानन्दन पत ने आज की इस स्थिति का चित्रण अग्राङ्कित किया है—

तर्क नियंत्रित यान्त्रिकता के यद प्रहार से,
ध्वस्त हो रहे अन्तर्मन के सूक्ष्म सगठन।
सत्यो के आदर्शों के भावो स्वप्नो के,
श्रद्धा विश्वासों के संयम तप साधन के।
मनुष्यत्त्व निर्भर है जिन ज्योति स्तम्भो पर॥

मानव आत्मा का खाद्य प्रेम है। प्रेम, श्रद्धा, सहानुभूति और विश्वास के अभाव मे वह जीवित नही रह सकता। विद्या-वैभव मनुष्य के भूषण बन सकते हैं, जीवन के आधार नही। जग का वैभव विलास मानसिक तुष्टि भले ही कर सके आत्मा का पोषण उससे असम्भव है। कवियो की दृष्टि मे बिना आँसू के जीवन भार बन जाता है। इसलिए वह कहता है—

रसवती भू के मनुज का श्रेय, यह नहीं विज्ञान कटु आग्नेय,
श्रेय उसका, प्राण मे बहती प्रणय की वायु।
मानवो के हेतु अर्पित, मानवों की आयु,
श्रेय उसका आँसुओं की धार, श्रेय उसका भग्न
वीणा की अधीर पुकार।

मनुष्य के ज्ञान का तो इतना अधिक विस्तार हो गया है कि अब उसको और बढाने की आवश्यकता प्रतीत नही होती। आज जिस चीज की सबसे अधिक आवश्यकता है वह है स्नेह और बलिदान, आँसू और विश्वास, सुकोमल भावना और मन्द मुस्कान। डॉ रामकुमार वर्मा 'ने आधुनिक कवि' मे अपना दृष्टिकोण प्रकट करते हुए लिखा है "कि आज आवश्यकता इस बात की है कि हमारा बुद्धवाद सृष्टि के कण-कण मे व्याप्त स्नेह और पारस्परिक हित की भावना खोजे।"

आधुनिक यन्त्र सभ्यता का सन्त्रास बीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध का नया कवि बड़ी गहराई से अनुभव कर रहा है। नए कवि का युगबोध पिछले सभी काव्य युगो से अधिक सजग और विश्लेषणात्मक है। मानव जीवन मे आज जो भय और त्रास, आशका और कुंठा, निराशा और अनास्था का वातावरण व्याप्त है उसका एक प्रमुख कारण मनुष्य का व्यापक युग बोध है जो वैज्ञानिक यन्त्र सभ्यता की सबसे बडी देन है। तुलसी ने कितने अनुभव की बात कही थी कि 'सबसे भले हैं मूढ़ जिनहिं न व्यापे

जगत गति'। आज इस कथन की सार्थकता पूर्णतः अनुभव हो रही है। यंत्र सभ्यता ने मनुष्य के बोध का इतना विस्तार कर दिया है कि वह दिग्भ्रमित होकर अप्रमेय ज्ञान के अथाह सागर में निराधार गोते खा रहा है। तुलसी ने जब 'जगत गति' कहा था तब 'जगत' शब्द का भी वह व्यापक अर्थ नहीं रहा होगा जो आज है। आज के जगत् का विस्तार अकल्प्य है—

जहाँ तक देखते हो
सोचते हो, कल्पना करते हो
वह सब, समूची सृष्टि
तुम्हारी भावना और क्रिया का
स्वाभाविक रंगमंच है।
अब तुम अपने को
सिर्फ धरावासी
सिर्फ हिन्दुस्तानी, अरब या अंग्रेज,
सिर्फ जर्मन, फ्रेंच या रूसी
कैसे कह और मान सकते हो ?[1]

इस अकल्प्य जगत् के बोध में मानव-चेतना के सभी सीमान्त एक दिशा द्वारा अन्धकार में खो गए हैं। इतिहास के किसी भी पूर्वगामी काल में चेतना के सभी स्तरों पर यातना का ऐसा अन्तिम और नग्न साक्षात्कार मनुष्य ने पहले नहीं किया। सारी सृष्टि एक विराट् चिह्न से आच्छादित है और मनुष्य निःशस्त्र अरक्षित अशरण उसकी फाँसी पर झूल रहा है। कवि के शब्दों में—

चुक गए हैं सारे आधार धरती के
झूठे पड़ गए हैं सारे रूप बंध जगती के
ब्रह्मांडों को निःशेष पीकर फिर भी प्यासा मैं।[2]

कवि की दृष्टि में इस युग ने जीवन पर तलवार सी खिंची है। जिन्दगी मृत्यु से भारी हो गई है। भूख, बीमारी, गरीबी, गन्दगी है। जिन्दगी बोटियों के मोल बिक रही है। आदमी का सम्मान गिर गया है। मनुष्यता की गरिमा समाप्त हो गई है। आदमी बन्दूक की बारूद है। जब बहार को फूल सा खिलना चाहिए तब युद्ध की तैयारियाँ हो रही हैं। रंगीन जीवन की छटा मिट रही है। हिंसक सनसनी घटाएँ छा रही हैं। विश्व में कुटिलता और अज्ञान फैला हुआ है।[3] आधुनिक युग में इस बोध में जीवन शाम होने से पहले ही समाप्त हो जाता है। कवि अनुभव करता है कि यह जिन्दगी एक सर्कस वाली लड़की की तरह है जो तारों से पीठ सटाए खड़ी है और जिसके ऊपर, नीचे, दाएँ, बाएँ खतरनाक खंजर गड़ रहे हैं फिर भी वह

1. देवराज—'[illegible] के बाद'
2. वीरेन्द्र कुमार जैन—'[illegible] का पूर्व पुरुष'
3. गिरिजा कुमार माथुर—'धूप के धान'

मुस्कुरा रही है और हजारो लाखो आँखें विस्मय से देख रही हैं बिना यह सोचे कि निशाना चूकने पर बेचारी लड़की का क्या होगा।[1] भावना, स्नेह और प्यार के अभाव का अनुभव यंत्र युग का प्रत्येक व्यक्ति कर रहा है। जीवन मे न उमग है, न उत्साह, न मोहक आशाएँ केवल विज्ञान के नूतन आविष्कारो को जानने तथा देश-विदेशो की हारजीत की जानकारी की चाह प्रत्येक के मन को आक्रांत किए है। युग की इन सारी समस्याओ और चेतनाओं से घबराकर मनुष्य की इच्छा होती है कि वह चेतन की अपेक्षा जड होता तो अच्छा होता, तब उसे ये सारी दुविधाएँ, ये सारे द्वन्द्व नही झेलने पड़ते। कविवर भवानीप्रसाद मिश्र की 'मैं जड हो जाना चाहता हूँ,' कविता आधुनिक चेतना त्रसित व्यक्ति की मानसिक स्थिति की यथार्थ अभिव्यक्ति है—

मुझे चेतना से घबराहट होती है
मैं जड़ हो जाना चाहता हूँ।
× × ×
कल आएगी सुबह। जो लाएगी सुबह सो मैं जानता हूँ
और तकलीफ मुझे इस जानने की है
क्यों जानता हूँ इतनी बहुत सी बातें
× × ×
थोड़ा सा जानने के आगे
जीना मुश्किल हो गया है
सब कुछ अजीब लगता है मुझे मेरा
उठा के डंडा डेरा
चला क्यों नहीं जाता मेरा ज्ञान घेरे यहाँ से
यह जाए तो मजा आए।[2]

नई कविता मे आधुनिक जीवन का यह सन्त्रास विविध-रूपो मे अभिव्यक्त हुआ है। मनुष्य शान्त एकान्त के लिए जैसे तरस गया है। यंत्र युग की यह विवशता जीवन को बोझिल बना रही है। जिससे घुटन उत्पन्न होती है। अज्ञेय लिखते है—

सूनी सी एक साँझ
दबे पाँव मेरे कमरे मे आई थी।
× × ×
पर उस सलोनी के पीछे
घुस आई बिजली की बत्तियाँ
बेहया धड़धड़ गाड़ियों की
मनुष्यो की सड़ी सड़ी बोलियाँ

1 चन्द्रकान्त कुसनूरकर—'नई कविता,' भाग-6
2 चकित है दुःख

वह रुकी तो नहीं आई तो आ गई
पर साथ-साथ मुरझा गई
उसके पहले ही मद्धिम अरुणाली पर
घुटन की एक स्याही सी छा गई ।

'ट्रैफिक पुलिसमैन' शीर्षक कविता मे भारत भूषण अग्रवाल ने यन्त्रो की सृष्टि मे मनुष्य की निरीहता की ओर सकेत किया है। अब हर काम मशीन से सम्भव है। अत मनुष्य जीवन की निरर्थकता सिद्ध होती जा रही है। ट्रैफिक पुलिसमैन बीस साल बाद ड्यूटी कर रिटायर हुआ तो उसने देखा कि उस चौराहे पर जहाँ वह ड्यूटी देता था अब ऑटोमैटिक लाइटें लगी है। वह यह सोचकर दु खी है कि क्या मैं आयु-भर मशीन की एवजी करता रहा ।

यन्त्र युग के इस निराशा और घुटन भरे जीवन का कभी न कभी अत होगा इसके प्रति कुछ कवि आस्थावान है। गिरजाकुमार माथुर का कहना है—कि युद्ध की मृत्यु की, अकाल की, अनाज के भण्डारो की, अशान्ति के लिए कुचक्रो की, शान्तिहित रक्त की, सैनिको के मरने की अरबो मे खर्च होने वाली राशि की, राकेट, जैट, उद्जनबम, अणु की महाशक्ति से भविष्य की मृत्यु हो गई है किन्तु मनुष्य का भविष्य क्या कभी मरता है ? जीवन मे जीने का बल है—

जयति मृत्यु मरते भविष्य की
जय हो जीवन के भविष्य की ।
है झझा पथ, पद आहत, दीपक मद्धिम है
× × ×
संघर्ष रात काली, मजिल पर रिमझिम है,
लेकिन पुकारता आ पहुँचा युग इन्सानी
दो कदम रह गया स्वर्ग चढाई अन्तिम है ?[1]

इस भाँति यत्र सभ्यता मे कुचली मानवता के पुनरुद्धार के प्रति आधुनिक कवि विशेष रूप से जागरूक है ।

1. धूप के धान, पृष्ठ 98-99

9

हिन्दी कविता पर पाश्चात्य प्रभाव

भारत मे विदेशी शासन की स्थापना के वाद यहाँ के रहन-सहन, खान-पान, वेशभूषा, सस्कृति एव साहित्य को विदेशी सस्कृति एव साहित्य ने अनिवार्य रूप से प्रभावित किया। अग्रेजी शिक्षा के विस्तार के साथ यह प्रभाव दिन-दिन वृद्धि पाता गया। वगाल मे अग्रेजी के सर्वप्रथम एव सर्वाधिक प्रसार के कारण वहाँ का साहित्य सर्वाधिक रूप मे विदेशी साहित्य से प्रभावित हुआ। वगाल के प्रसिद्ध लेखक माइकेल मधु सूदन दत्त को वगला का मिल्टन, नवीनचन्द्र सेन को वायरन और अ ग्रेजी कवि शैली से अत्यधिक प्रभावित होने के कारण रवीन्द्र नाथ टैगोर को वगला का शैली कहा जाने लगा।

साहित्य पर पश्चिमी प्रभाव की यह प्रक्रिया शनै-शनै अन्य प्रान्तीय साहित्य को भी प्रभावित करने लगी। हिन्दी मे वगला के माध्यम से पाश्चात्य प्रभाव की प्रक्रिया के स्पष्ट दर्शन हमे छायावादी काव्य से प्रारम्भ होते हैं। छायावादी काव्य अ ग्रेजी के रोमांसवादी काव्य से वहुत अधिक प्रभावित है। काव्य मे वाह्य स्थूल की अपेक्षा आन्तरिक अनुभूतियो का वर्णन, प्रकृति एव नारी सौंदर्य का अमित आकर्षण, निराशावाद एव रहस्यवाद मूलत रोमांटिक काव्य की प्रवृत्तियाँ हैं जिन्हें छायावादी कवियो ने ग्रहण किया। काव्य की नव्यशास्त्रीय परम्परा एव नियमबद्धता का विरोध जिस प्रकार रोमांटिक कवियो ने किया उसी प्रकार छायावादी कवियो ने रीतियुगीन काव्य रूढियो,परम्परागत रूपको और अलकारों को तोडने का उपक्रम किया। छायावादी कवि प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी वर्मा, रामकुमार वर्मा आदि की रचनाओं मे व्यक्तिवादी प्रवृत्ति, स्वच्छन्दता, रूढि विरोध, मानव के प्रति उदार दृष्टि, प्रेम और सौंदर्य की प्रधानता, भौतिकता का विरोध आदि विशेषताएँ पश्चिमी स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति की ऋणी हैं। पन्त ने इस ऋण को स्वीकार करते हुए लिखा है—"पल्लव काल मे वे उन्नसवी शती के अ ग्रेंजी कवियो मुख्यत शैली, कीट्स, वर्डसूवर्थ, टैनीसन से विशेष प्रभावित हैं क्योंकि इन कवियो ने उन्हे मशीन युग का सौंदर्य वोध और मध्यवर्गीय सस्कृति का जीवन स्वरूप दिया है।" छायावादी शैली एव शिल्प मे नव्यता का कारण भी पश्चिमी प्रभाव है। अमूर्त विधान, मानवीकरण, ध्वनि व्यञ्जनात्मक

शब्दो का प्रयोग, सम्बोधन गीत, चतुर्दशपदी शोकगीति (Odes) आदि अंग्रेजी साहित्य की देन है।

छायावादी कविता के बाद हिन्दी कविता पर पडने वाला दूसरा पश्चिमी प्रभाव मार्क्सवाद का है। वर्गहीन समाज की स्थापना के लिए शोषितो को सगठित कर शोषको की सत्ता मिटाना मार्क्सवाद का प्रथम उद्देश्य है। इसकी पूर्ति के लिए वह कला एव साहित्य को भी एक अस्त्र की भाँति प्रयोग करने की प्रेरणा देता है। जोजफ फ्रीमेन के अनुसार कला को शोषित वर्ग के लिए उनके स्वातन्त्र्य युद्ध का एक अस्त्र बनना चाहिए (Art an instrument in the class struggle must be developed by the proletariat as one of its weapons)।

मार्क्सवादी सिद्धान्तो एव रूस पर उसकी अद्‌भुत विजय ने विश्व के पराधीन राष्ट्रो को बहुत आकर्षित किया। भारत मे मार्क्सवादी पार्टी की स्थापना हुई और भारतीय लेखको एव कवियो ने साहित्य मे प्रगतिवाद को जन्म दिया। हिन्दी की प्रगतिवादी कविता न केवल मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित है अपितु अधिकाँश मे उन्ही सिद्धान्तों की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है। बहुत से हिन्दी कवियो ने काव्य को वर्ग सघर्ष तीव्र करने का साधन बनाया। मार्क्सवादी कवि केदारनाथ अग्रवाल ने कहा "हिन्दी का यह युग साम्राज्यवाद, यथार्थवाद, प्रगतिवाद और मार्क्सवाद का युग है। जनता ने साम्राज्य विरोधी मोर्चे के विरोध मे अपना बलवान मोर्चा बनाया है और साम्राज्यवादी नीति का अन्त काल आ गया है। मार्क्सवाद का प्रभाव जन-मानस पर इतना तीव्र था कि छायावाद के आधार-स्तम्भ पन्त जैसे कवि ने काव्य के आदर्शों मे मार्क्सवादी दृष्टि से परिवर्तन का आह्वान किया। कल्पना की उच्च उडानो से उतर कर काव्य पृथ्वी पर आया। पन्त ने कहा—

> यह सत्य है जिस अर्थ भित्ति पर
> विश्व सभ्यता आज खडी है
> बाधक है वह जन-विकास की
> उसमे आज अपेक्षित है-व्यापक परिवर्तन। भू-मंगलसहित।

प्रगतिवादी काव्य की अधिकांश रचनाएँ शुद्ध मार्क्सवादी वर्ग सघर्ष और उनके प्रचार की द्योतक हैं। काव्य मे यथार्थवाद, ईश्वर और धर्म का खण्डन, क्रान्ति का आह्वान, वर्ग विषमता के प्रति आक्रोश, स्थापित नैतिक मूल्यो की अवमानना, सौंदर्य एव कला की जनवादी व्याख्या मार्क्सवादी प्रेरणा का फल है। मुक्तिबोध की 'चाँद का मुँह टेढा है'—पूँजीवादी सभ्यता पर कठोर व्यग्य है। यद्यपि मार्क्सवाद के प्रभाव से हिन्दी मे दीन-हीन दलित शोषित जनता के बडे करुण दृश्य अकित हुए हैं, किन्तु यह कविता अपनी सकुचित राजनीतिक मनोवृत्ति के कारण भारतीय जन-मानस मे विशेष आहत नही हो सकी।

आधुनिक युग के जीवन-मूल्य एव सस्कृति के तत्त्व प्रचार एव प्रसार के द्रुतगामी वैज्ञानिक साधनो द्वारा अन्तर्राष्ट्रीयता के परिप्रेक्ष्य मे निर्मित हो रहे हैं। फलत. काव्य

आदि कलाओ का परिवेश भी किसी एक देश की सीमा मे बद्ध न रहकर विश्व-व्यापी हो गया है। चेतना के स्तर पर भौगोलिक सीमाएँ इतनी निकट आई हैं कि एक दूसरे का प्रभाव अवश्यम्भावी हो गया है। प्रगतिवाद के बाद हिन्दी की प्रयोगवादी तथा नई कविता विज्ञान के चर्मोत्कर्ष पर पहुँचने की स्थिति की कविता है, अत इस पर पश्चिमी साहित्य एव दर्शन का प्रभाव अन्य काव्य युगो की अपेक्षा अधिक माना लक्षित होता है। चेतना व शिल्प दोनो स्तरो पर यह कविता पश्चिमी प्रभाव से ओत-प्रोत है। दो महायुद्धो की विनाशकारी भूमिका ने पश्चिमी देशो मे जिन विघटनशील मानव-मूल्यो एव अनास्थावादी प्रवृत्तियो को जन्म दिया उन्होंने बहुत गहरे रूप मे वहाँ के साहित्यकारो को प्रभावित किया। अग्रेजी कवि टी एस इलियट, लुई मैकनीस, एडिथ सिटवेल, रुपर्ट ब्रुक, विलफ्रेड ओवेन, सेसिल आदि की रचनाओ मे युद्ध की विभीषिकाओ और तज्जन्य निराशा, कुण्ठा, कुत्सा, सन्त्रास, विक्षोभ, बेचैनी आदि प्रवृत्तियो का भयावह वर्णन है। टी एस इलियट का 'दी वेस्टलैंड' इनमें अग्रणी है जिसका हिन्दी काव्य पर गहरा प्रभाव है। प्रयोगवाद तथा नई कविता में अनास्था, भ्रूण हत्या, निराशा, कुण्ठा, त्रास आदि का प्रभूत वर्णन है। यद्यपि यह सत्य है कि युद्ध की जिन विभीषिकाओ का प्रत्यक्ष दर्शन पश्चिम ने किया भारत मे वैसी स्थिति नही आई किन्तु मानव-सस्कृति पर इन विश्व-युद्धो ने जो अनिष्टकारी प्रभाव छोड़ा वह एकदेशीय न होकर सार्वभौमिक था,अत हिन्दी मे चित्रित मृत्युबोध, सशय, लघुता, पीडा, निरर्थकता, व्यक्तिवादिता आदि प्रवृत्तियाँ युगीन सन्दर्भ से नितान्त कटी हुई नही हैं। हिन्दी मे पौराणिक कथाओ के माध्यम से कवियो ने युद्ध-जनित दृश्यो और परिणामो पर प्रकाश डाला है। दुष्यन्त कुमार का 'एक कण्ठ विषपायी', नरेश मेहता का'सशय की एक रात', धर्मवीर भारती का 'अन्धा युग'काव्य है। 'एक कण्ठ विषपायी' का पात्र सर्वहत युद्धोपरान्त उग आई सस्कृति के ह्रासमान मूल्यो का भग्न स्तूप है। उसमे युद्ध के बाद सडती लाशो पर मँडराती चीलो, गिद्धो एव भिनभिनाती मक्खियो का सजीव दृश्य है। 'अन्धायुग' मे महाभारत युद्ध के बाद की स्थिति का लोमहर्षक वर्णन है। कवि के शब्दो मे युद्धोपरान्त वह अन्धा युग अवतरित हुआ जिसमे स्थितियाँ, मनोवृत्तियाँ, आत्माएँ सब विकृत हैं। इसके अश्वत्थामा व युयुत्सु के जीवन की अहवादी, आत्मघाती, विद्रोही एव बर्बर पशुतामयी वृत्तियाँ युद्ध का ही प्रतिफलन है।

वैचारिक स्तर पर प्रयोगवाद तक नई कविता पश्चिमी विचारक फ्रायड युग एडलर की यौन वर्जनाओ, किर्केगार्ड, हेडेगर, कामू सार्त्र आदि की अस्तित्ववादी विचारधाराओ से बहुत प्रभावित है। फ्रायड के अनुसार कला-सृजन मे कलाकार की दमित कुण्ठित वृत्तियों की सत्ता सर्वोपरि रहती है। फलत काव्य मूलत कवि की दमित कुण्ठित काम भावनाओ की अभिव्यक्ति है। इस विचारधारा के प्रभाव से प्रयोगवाद तथा नई कविता मे यौन वर्जनाओ का उन्मुक्त चित्रण हुआ है। अज्ञेय इस क्षेत्र के अग्रणी कवि हैं। गिरिजाकुमार माथुर, कुँवरनारायण, धर्मवीर भारती

आदि के काव्य मे भी कुण्ठित काम भावनाओ की अभिव्यक्ति हुई है। कुंवरनारायण के चक्रव्यूह से ये पक्तियाँ उदाहरण के लिए प्रस्तुत है—

> **आमाशय, यौनाशय, गर्भाशय, जिसकी जिन्दगी का यही आशय**
> **यही इतना भोग्य कितना सुखी है वह, भाग्य उसका ईर्ष्या के योग्य।**

पश्चिमी अस्तित्ववाद व्यक्तिपरक दृष्टिकोण है जो व्यक्ति को सामाजिक प्राणी न मानकर पूर्ण स्वतन्त्र इकाई के रूप मे स्वीकार करता है। इसमे व्यक्ति अपने चिन्तन एव निर्णय मे पूर्ण स्वतन्त्र है, जिसके कारण वह पीडित भी होता है। व्यक्ति जीवन मे एकाकीपन, ऊबकाई, घृणा, क्षण का महत्त्व व लघुता वोध, अनुपयोगिता, भोगवादिता, अहवाद, पराजय आदि की प्रधानता इसी चिन्तन के फल हैं। हिन्दी काव्य मे अस्तित्ववादी लघुता के बौनेपन के, अनास्था एव सशय की भाँति व्यक्त हुए हैं। क्षण और मृत्यु को जीवन का सत्य स्वीकार करने वाली अस्तित्ववादी धारणा ने हिन्दी कवियो को इतना अधिक प्रभावित किया है। नई कविता का अधिकाँश भारतीय वातावरण से उद्भूत न होकर पश्चिमी जीवन की प्रतिच्छाया प्रतीत होता है। भारती की 'कनुप्रिया' की राधा तथा कुंवरनारायण के 'आत्मजयी' का नचिकेता भारतीय वातावरण से उद्भूत पात्र न होकर पाश्चात्य अस्तित्ववादी प्रवृत्ति से प्रभावित पात्र प्रतीत होते हैं।

प्रयोगवाद तथा नई कविता का शिल्प सर्वाधिक रूप मे पाश्चात्य शैली से प्रभावित है। प्रयोगवाद नामकरण ही नई शैली एव शिल्प के कारण पडा जिसमे प्रतीको, बिम्बो, नए उपमानो, नए मुहावरो, नई भाषा, विराम आदि चिह्नो, आडी तिरछी लकीरो, कोष्ठको आदि के माध्यम से उलझी हुई सवेदनाओ को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया गया है। अज्ञेय के शब्दो मे "नई कविता की यथार्थपरक दृष्टि, वैयक्तिकता जहाँ एक ओर हमारे देश की उपज है उसी के दूसरी ओर उसका शिल्प पक्ष, भाषा की ध्वन्यात्मकता का रूप कुछ पाश्चात्य-सा लगता है।" प्रयोगवादी काव्य नए प्रतीको के लिए फ्रास के प्रतीकवादियो रिम्बो, मलामे वेलरी का ऋणी है तो बिम्बो के लिए एजरा पाउण्ड, जेम्स जायस, हायकिन्स आदि से प्रभावित है। अज्ञेय, शमशेर बहादुरसिंह, भवानीप्रसाद मिश्र, भारती, नागार्जुन आदि की कविताओ मे प्रतीको का आधिक्य है। पश्चिम से गृहीत नए प्रयोगो के कारण जहाँ हिन्दी भाषा की ग्राहिका शक्ति बढी है वही प्रयोगाधिक्य के कारण कविता की प्रेषणीयता कम हुई है। सैयद शफीउद्दीन की 'प्रेम की ट्रेजेडी' शीर्षक कविता इसका उदाहरण है।

साराश मे आधुनिक कविता विशेषत प्रयोगवाद एव नई कविता भाव और शिल्प दोनो क्षेत्रो मे पश्चिमी दर्शन एव प्रयोगवादी शिल्प से प्रभावित है, जिसके फलस्वरूप पाठक का इस कविता से साधारणीकरण किंचित् कठिन हो गया है।

10

राजस्थान के साहित्य को महिलाओं की देन

अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष के लक्ष्य मे इस वर्ष सारे विश्व मे नारी सम्बन्धी विविध समस्याओ पर गम्भीर चिन्तन एव मनन हुआ है। न जाने कितनी विचार गोष्ठियाँ एव समारोह सरकारी तथा गैर सरकारी सस्थाओ की ओर से राष्ट्रीय तथा प्रान्तीय स्तर पर आयोजित किए गए हैं। नारी-जीवन के जिन पक्षो पर पहले कभी दृष्टिपात नही किया गया वे इस वर्ष विश्व के प्रधान आकर्षण का विषय बने हुए हैं। एक ओर नारी-जीवन के अभावो का व्यापक विश्लेषण है दूसरी ओर उन्हें सम्मानित एव पुरस्कृत करने की समुचित व्यवस्था हुई है। आज का यह सम्मेलन भी महिला वर्ष के आयोजनो की एक कडी है।

इस वर्ष की गतिविधियो को देखकर, सुनकर तथा समाचार-पत्रों द्वारा जानकर मुझे ऐसा प्रतीत होता है जैसे शताब्दियो बाद पुन विश्व मे 'यत्रनार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' की गौरवमय भारतीय भावना का अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष के रूप में विश्वघोष हुआ है। सदियों बाद मनुस्मृति की उक्त पक्ति मे निहित सत्य को विश्व ने सामूहिक रूप से स्वीकृति प्रदान की है। सम्भव है मेरे इस कथन मे किसी को अत्युक्ति का आभास मिले किन्तु भारतीय सस्कृति इसकी साक्षी है कि नारी-सत्कार के अभाव मे उसे कितनी विषम परिस्थितियो से जूझना पडा है। जब शकराचार्य ने बडे गर्व से प्रश्नोत्तरी के रूप मे प्रश्न किया 'द्वार किमेक नरकस्य?' और स्वय ही उत्तर दिया 'नारी' अथवा प्रश्न किया गया 'विज्ञान महाशितयोस्ति को वा?' और उत्तर मे कहा गया 'नार्या पिशाच्या न च वंचितो य' तब भारतीय सस्कृति का इतिहास किस गर्त मे था इससे कोई अपिरिचत नही है। समाज मे कैसी अराजकता थी कौन नही जानता? कहने का तात्पर्य यह है कि नारी-सम्मान का यह वर्ष सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में विश्व की महान् घटना है।

यद्यपि नारी सम्बन्धी इस स्थिति का विवेचन आज मेरे निबन्ध का विषय नही है किन्तु किसी भी क्षेत्र मे चाहे वह सामाजिक हो, धार्मिक या राजनीतिक हो,

जब महिलाओं की देन की चर्चा की जाती है तब नारी सम्बन्धी समस्त परिस्थितियाँ सहसा मस्तिष्क मे कौंध जाती हैं।

राजस्थान के साहित्य को महिलाओ की देन के विषय पर कुछ विचार प्रस्तुत करने के लिए आज मुझे यहाँ आमन्त्रित किया गया है। राजस्थान साहित्य अकादमी समारोह के आयोजको ने मुझे यह अवसर प्रदान किया इसके लिए मैं अत्यन्त आभारी हूँ।

साहित्य-सृजन के क्षेत्र मे जहाँ तक महिलाओ की देन की बात है आधुनिक युग मे पूर्व वह बहुत अधिक मात्रा मे उपलब्ध नही है। वैदिक युग मे जब समाज मे नारी का स्थान ऊँचा और प्रतिष्ठित था, तब कुछ ऐसी महिलाओं के नामो का उल्लेख है जिन्होंने साहित्य के क्षेत्र को अपनी रचनाओ मे प्रशस्त किया। वैदिक एव सस्कृत साहित्य मे गर्गी, मैत्रेयी, घोषा, विश्ववारा, अपाला, आदि महिलाओ का योग उल्लेखनीय रहा है। पाली साहित्य मे भी भिक्षुणियो द्वारा रचित थेरी गाथाएँ नारी जीवन की मार्मिक कहानी प्रस्तुत करती हैं। किन्तु इसके पश्चात् जैसे-जैसे नारी समाज की प्रतिष्ठित इकाई न होकर पुरुषो की व्यक्तिगत सम्पत्ति बना दी गई। उसकी कला एव भावनाएँ घर की चार-दीवारी से टकराती रही, वे बाहर प्रकाश मे नही आसकी। राजस्थानी साहित्य जब स्वरूप धारण कर रहा था तब अन्य सामाजिक भारतीय नारी विशेषत राजस्थान की नारी, शिक्षा के अभाव, पर्दा-प्रथा तथा रूढियो से बुरी तरह जकडी हुई थी। फलत साहित्य-सृजन की दिशा में उसे वाँछित प्रेरणा व प्रोत्साहन नहीं मिल सका किन्तु यह सत्य है कि उन्होंने कभी रूढि का प्रतिबन्ध स्वीकार नही किया। भावो की मन्दाकिनी कही किसी बन्धन मे अवरुद्ध नही रही अत समय पर ऐसी प्रबुद्ध व प्रतिभा-सम्पन्न महिलाएँ भी हुई जिन्होंने अपने उद्गारो को अपनी भाषा मे अभिव्यजित कर राजस्थान के साहित्य-सवर्द्धन मे महत्त्वपूर्ण योग दिया। इससे पूर्व कि मैं इन महिलाओ के योगदान की चर्चा करूँ यह तथ्य आपके सामने रखना चाहती हूँ कि राजस्थान की महिलाओ द्वारा प्रणीत अधिकाँश साहित्य अभी तक केवल पाँडुलिपियो या हस्तलिखित प्रतियो के रूप मे देश के अगणित सग्रहालयो व ग्रन्थ-भण्डारो की शोभा बढा रहा है। अप्रकाशित कितना साहित्य इन ग्रन्थ-भण्डारो में सचित है इसका सही लेखा-जोखा प्रस्तुत करना सरल नही है क्योकि कई ग्रन्थ-भण्डार ऐसे हैं जिनमे सग्रहीत पुस्तको के प्रकाशन की बात तो दूर उनकी सूचियाँ तक तैयार नही हैं, और जिनकी सूचियाँ बना दी गई है, केवल उनके आधार पर इन कृतियों के स्वरूप का परिचय प्राप्त करना न सम्भव है न उचित ही। फलत इस अप्रकाशित साहित्य-सपदा के प्रकाशन के बिना महिलाओ के योग की कोई चर्चा अधूरी रह जाती है। आशा है साहित्य अकादमी तथा शोध छात्र-छात्राएँ इस विपुल साहित्य राशि को प्रकाश में लाने का प्रयास करेंगे और राजस्थान के साहित्य को महिलाओ की महत्त्वपूर्ण देन की सार्थकता सिद्ध करेंगे। अप्रकाशित रचनाओ को प्रकाश मे लाने का योगदान भी उतना ही महत्त्वपूर्ण होगा जितना साहित्य सर्जना

का। राजस्थान के साहित्य मे महिलाओ के योगदान की चर्चा करते हुए मुझे यह कहने मे अत्यन्त गर्व का अनुभव होता है कि न केवल राजस्थान के साहित्य मे अपितु विश्व के विपुल साहित्य में एक भी ऐसी महिला साहित्यकार हमें उपलब्ध नहीं है जो राजस्थान की अमर गायिका भक्ति मन्दाकिनी कवियत्री मीरांबाई की तुलना में प्रस्तुत की जा सके। इस एक कवियत्री की रचनाओ ने राजस्थान का साहित्य ही नहीं विश्व का साहित्य अप्रतिम रूप मे गौरवान्वित हुआ है। स्वानुभूत प्रणय की ऐसी सात्विक अभिव्यजना विश्व के साहित्य मे दुर्लभ है। पुरुष कवियों द्वारा नारी-हृदय की वेदना का वर्णन विपुल मात्रा मे हुआ है। जायसी की नागमती की विरहानुभूति, सूर की राधा का प्रणय, गुप्त जी की उर्मिला की व्याकुल वेदना नारी हृदय की सुन्दरतम अभिव्यजनाएँ हैं किन्तु मीरां का दर्द इन सबमे अधिक हृदयस्पर्शी एवं मार्मिक है। 'घायल की गति घायल जाने और न जाने कोय' में जो अनुभूति है वह किसी कवि को इसके समकक्ष नहीं ठहरने देती। मीरां के एक-एक पद में भक्ति और विरह जैसे साक्षात् रूप मे विद्यमान हैं। मध्ययुगीन सामाजिक, धार्मिक एव राजनीतिक कठोर प्रतिबन्धो मे रहकर भी जिसने राजस्थान की सामाजिक धार्मिक रूढियों को खुले रूप से चुनौती दी हो ऐसा व्यक्तित्व न केवल साहित्य का अपितु इतिहास का गौरव है। साराश यह कि प्रेम दिवानी मीरां का साहित्य साहित्य की अनुपम निधि है। इन एक कवियत्री की रचनाओ ने साहित्य मे महिलाओ के योगदान को न केवल सार्थक बनाया है अपितु समृद्ध एव गौरवान्वित किया है। मीरां बाई ने अपने नाम को भक्ति और पवित्रता का प्रतीक बना दिया है।

मीरां बाई के अतिरिक्त जिन महिलाओ ने राजस्थान के साहित्य-सवर्द्धन मे महत्त्वपूर्ण योग दिया है उनमे झीमा चारणी का रचना काल सवत् 1480 के आसपास माना जा सकता है जो डिंगल की प्रसिद्ध कृति 'अचलदास खीची री वचनिका' मे वर्णित युद्ध का है। गगरोण के शासक खीची अचलदास को उनकी बडी रानी लाला मेवाडी के प्रबल प्रेमपाश से छुडाकर उनकी दूसरी रानी उमा सांखली की ओर आकृष्ट करने का श्रेय झीमा चारणी की काव्य प्रतिभा को है। झीमा चारणी की मर्मस्पर्शी काव्य-रचना ने अचलदास को ऐसा मोहित किया कि वे सदा-सदा के लिए उमा सांखली के हो गए। यह चारण कवियत्री बीकानेर राज्य के प्रसिद्ध कवि बीठू चारण की बहिन थी। इनने कई युद्धो मे चारणी का काम किया। श्रीमती सावित्री सिन्हा के शब्दों मे 'झीमा की कहानी उस अन्धकारमय नारी के इतिहास मे जुगनू की चमक की भाँति दिखाई देती है। मुन्शी देवीप्रसाद ने इस चारणी को अति वाचाल एव कविता मे परम रसाल बताया है। झीमा का काव्य उसके काव्य-चातुर्य तथा वाग्विदग्धता का उदाहरण है। नमूने के रूप में कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

पाट पटम्बर ओढणाँ, आई सीस गुथाइ।
अचल अजाची सिद्ध ज्यूँ, सार न पूछी काइ॥
किरती माथै ढूल गई. हिरणी झोला खाय।
हार सटै प्रिय आँणियो, हसै न सांम्हो थाय॥

आसा राग अलापियो, झीमां छदो जांण।
धन आजू णो दीहडो, मांनीजियो महराण।।

पदमा सांदू—राजस्थानी स्त्री कवियत्रियो मे पदमा सांदू का नाम उल्लेखनीय है। ये कवि बारहठ शकर की पत्नी और कवि माला सांदू की बहिन थी। इनका रचनाकाल सन् 1640 के आसपास माना जाता है। ये अपने पति बारहठ शकर से रुष्ट होकर राजा रामसिंह के भाई अमरसिंह के पास चली आई। अमरसिंह के विद्रोही हो जाने के कारण अकबर ने अपने सेनापति अरब खाँ को इन्हें पकडने के लिए भेजा। अमरसिंह अफीम के नशे मे घुत्त थे। पद्मा ने अपने उद्बोधक गीत द्वारा उन्हें जगाकर युद्धार्थ प्रेरित किया। पद्मा का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ तो नही मिलता स्फुट गीत मिलते हैं। एक गीत का अश अवलोक्य है—

सहर लूटतौ सरब नित देस करतौ सरद,
कहर नर प्रगट कोधी कमाई।
उज्यागर झाल खग 'जैतहर' आभरण,
'अमर' अकबर तणी फौज आई।।
बौकहर साहिधर मार कर तौ वधू,
अभग अरिवृन्द तो सीस आया।
लाग गयणाग खग तोल भुज लकाला,
जाग हो जाग कलियाण जाया ।।

अमरसिंह की मृत्यु पर कहे गए इसके दो दोहे भी प्रसिद्ध हैं, जिनका उल्लेख प्रसिद्ध ख्यातकार दयालदास ने अपनी ख्यत मे किया है।[1]

चाँपादे—एक अन्य कवयित्री चाँपादे हैं जो वेलि के रचयिता डिंगल के सुप्रसिद्ध कवि राठोड पृथ्वीराज की भटियानी रानी थी। ये जैसलमेर के महारावल हरराज की पुत्री थी। यद्यपि इनके द्वारा रचित कोई स्वतन्त्र कृति अद्यावधि नही मिली है तथापि इनके कथित दो दोहे राजस्थानी के पाठको द्वारा प्रसगत बहुधा दुहराए जाते हैं। राठौड पृथ्वीराज एक बार दर्पण मे अपना मुँह देख रहे थे। सिर मे सफेद बाल देखकर चट उन्होंने उसे उखाड दिया, पास खडी चाँपादे इस पर हँस पडी। तब पृथ्वीराज के मुँह से अचानक यह दोहा निकला—

पीथल धोला आविया, बहुली लग्गी खोड़।
पूरे जोबन पदमणी, ऊभी मुक्ख मरोड़।।

रानी चाँपादे ने पति के उपर्युक्त कथन के उत्तर मे मार्मिक दोहे कहे—

प्यारी कहे पीथल सुणौ, धोलां दिस मत जोय।
नरां, नाहरां, डिग मरां, पाक्यां ही रस होय।।
खेजड पक्कां धोरियां, पथज गऊंधा पांव।
नरां, तुरगां बनफलां, पक्का-पक्का साव।।

1 दयालदास की ख्यात भाग 2, पृष्ठ 131,132.

अनूप सस्कृत लाईब्रेरी की प्रति सख्या 99 मे चाँपादे सम्बन्धी कुछ अन्य दोहे भी मिलते हैं। सम्भवत खोज करने पर इनकी रचित और सामग्री मिल सके।

सोढी नाथी (रचनाकाल सवत् 1730–31)

राजस्थानी साहित्य के अनन्य अन्वेषक एव विद्वान् डॉ टैसिटोरी ने सोढी नाथी का परिचय देते हुए लिखा है—

'सोढी नाथी री' शीर्षक एक जीर्ण पाण्डुलिपि बीकानेर की दरबार लाइब्रेरी मे प्राप्य है जिसमे 310 पृष्ठ हैं। पाडुलिपि देरावर की सोढी नाथी द्वारा लिखित है जो उसकी एकमात्र उपलब्ध रचना है। यह सोढी नाथी कौन थी तथा इसका व्यक्तित्व कैसा था ? इसकी कोई विस्तृत जानकारी नहीं मिलती। केवल इतना पता चलता है कि यह भोज की पुत्री थी। डॉ टैसिटोरी का अनुमान है कि ये कदाचित् अमरकोट के राणा भोज ही थे एव सोढी नाथी देरावर मे ब्याही गई थी। इनकी रचनाओ से पता चलता है कि यह परम वैष्णव थी। सोढी नाथी ने धार्मिक काव्यो की रचना की है जो निम्नांकित हैं—

भगवतभाव रा चन्द्रायणा, गूढारथ, साख्याँ, हरिलीला, नामलीला, बालचरित, रसलीला। सोढी नाथी की कृतियो से प्रतीत होता है कि ये निश्चय ही प्रतिभाशालिनी कवयित्री रही होगी। वस्तुत इनकी रचनाएँ प्रकाशित की जानी चाहिए जिससे इनके काव्य का सम्यक् मूल्यांकन किया जा सके। सम्भव है मीराँ के पश्चात् भक्ति काव्य परम्परा की यह महत्त्वपूर्ण कड़ी सिद्ध हो।

दयाबाई (जन्म सवत् 1750–1775 के बीच)[1]

दयाबाई महात्मा चरणदास की शिष्या थी तथा उनका जन्म चरणदास के ही गाँव डहरा (मेवात प्रदेश) मे हुआ था। इन्होंने 'दयाबोध' और 'विनयमालिका' नामक दो ग्रन्थो की रचना की। इनकी कविता के विषय हैं गुरु महिमा, प्रेम का अंग, सूर का अग, सुमिरन का अग आदि। इनके काव्य मे भक्त सुलभ दैन्य व वैराग्य की प्रधानता है। इनकी भाव-व्यजना सरल, निश्छल एव नारी सुलभ कोमलता से संस्पर्शित है। उदाहरणार्थ इनके तीन दोहे अवलोक्य हैं—

प्रेम पथ है अटपटो, कोई न जानत बीर।
कै मन जानत आपनो, कै लागी जेहि पीर॥
निर पच्छी के पच्छ तुम, निराधार के धार।
मेरे तुम ही नाथ इक, जीवन गन अधार॥
नहि सजम नहि साधना, नहि तीरथ व्रतदान।
मात भरोसो रहत है, ज्यो बालक नादान॥

सुन्दर कुंवरि (जन्म सवत् 1791)

ये किशनगढ राजसिंह की पुत्री तथा प्रसिद्ध भक्त कवि नागरीदास की बहिन थीं। बाल्यकाल से ही धार्मिक एव साहित्यिक वातावरण सुलभ होने के कारण

1. राजस्थानी भाषा और साहित्य डॉ मोतीलाल मेनारिया, पृष्ठ 302-303

इनकी सहजात प्रतिभा को अपने विकास का समुचित अवसर मिल गया तथा काव्य के प्रति इनकी अभिरुचि उत्तरोत्तर जाग्रत होती गई। इन्होने 11 ग्रथो की रचना की, जिनके नाम ये हैं—

नेहनिधि, वृन्दावन-गोपी-माहात्म्य, सकेत गल, रगभर, गोपी माहात्म्य, रस पुज, प्रेम सपुट, सार-सग्रह, भावना प्रकाश, राम रहस्य, पद तथा स्फुट कवित्त।

सुन्दर कुंवरि की कविता मे प्रेम और भक्ति का स्वर प्रधान है। रस, छंद अलकारादि का भी इन्हे अच्छा ज्ञान था जिसके फलस्वरूप इनकी काव्य-रचना सरस व भावपूर्ण बन पडी है। उनके द्वारा रचित कवित्त का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

श्याम रूप-सागर मे नैर बाट पाटथ के,
नचत तरग अग-अंग रगभगी है।
गाजन गहर धुनि बाजन मधुर बैन,
नागिन अलक जुग सोधैं सगभगी है।
भँवर त्रिभगताई पान पैं लुनाई ता मैं,
मोती मणि जलन की जोति जगमगी है।
काम पौन प्रबल धुकाब लोभी तातें,
आज राधे लाज की जहाज डगमगी है।।

बरजू बाई—डिंगल कवयित्री बरजू बाई को स्व. मुंशी देवी प्रसाद[1] तथा डॉ सावित्री सिन्हा[2] कविराजा करणीदास की बहिन मानते है परन्तु श्री सीताराम लालस के अनुसार वे करणीदास की पत्नी थी न कि बहिन।[3] इनका रचनाकाल सवत् 1800 के लगभग है। इन्होंने डिंगल मे अत्यन्त ओजस्वी एव सशक्त गीत-रचना की है। उनके द्वारा रचित गीत का एक अश अवलोक्य है, जो उन्होने बडली ठाकुर लालसिंह इलावत को सम्बोधन कर कहा था—

आंटीला ऊठ सलाटा गला, तो ऊपर लगा अम्बाला।[4]
नाह बाघ जागो नींदाला, कहजै कटक आवियो काला।।
लाखां बातां कर हठ लागो, आयो खड़ सो बायत आगो।
बापू तणो नगारो बागो, जागो सा रूम धजिया जागो।।

वरजूवाई का ही कहा हुआ एक और डिंगल गीत है जिसकी कुछ पक्तियाँ ये हैं—

केहा सुचाला अेरा की, नाव जेरा की बखाण कीजैं,
व जोड़ तैराकी, पैराकी नाग ताज।
अेराकी रुपगां आधा नोखा रीझावर पतो,
रींझादे अेरा की काछी, अेहा बाजराज।।

1 महिला-मृदुवाणी, पृष्ठ 3
2 मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ।
3 भारती, वर्ष 3, अक 2
4 राजस्थानी वीर गीत सग्रह, भाग 1, 5. 58-59, स. श्री सोभाग्यसिंह शेखावत।

उपर्युक्त गीत पर टिप्पणी करते हुए डॉ. सावित्री सिन्हा लिखती हैं—'वरजूबाई की इन पंक्तियों को काव्य की सज्ञा देना उतना ही उपहासास्पद है', जितना कि किसी बालक के टूटे-फूटे शब्दों के जोड के को कविता कहना ।[1]

वस्तुत यह विडम्बना है कि डिंगल से""हमारी ये विदुषियाँ एव विद्वान् वरजूबाई जैसी प्रतिभा-सम्पन्न कवयित्री की काव्य-रचना को बालोचित प्रलाप की सज्ञा देती हैं । यदि सस्कृत से निपट अनभिज्ञ किसी व्यक्ति को कालिदास के मदाक्रान्ता छन्दो का माधुर्य अनर्गल आलाप जान पडे तो इसमें कवि का क्या दोष है ?

सहजोबाई—इनका जन्म सवत् 1800 के लगभग मेवात प्रदेश के डहटा गाँव मे हुआ था तथा ये भी दयाबाई की भाँति महात्मा चरणदास की शिष्या थी। सहजोबाई ने अपने गुरु स्वामी चरणदास का बडे भक्ति-भाव से गायन किया है तथा उन्हें ईश्वर तुल्य माना है । इनकी रचना में प्रेम तत्त्व की प्रधानता है । यथा—

प्रेम दिवाने जे भये, मन भयो चकना चूर ।[2]
छकें रहैं घूमत रहैं, सहजो देख हजूर ।।
साहन कू तो भय घना, सहजो निर्भय रंक ।
कुंजर के पग बेडियाँ, चींटी फिरैं निसंक ।।

गवरीबाई—गवरीबाई का जन्म सवत् 1895 मे डूंगरपुर शहर मे हुआ था । इनका विवाह बाल्यावस्था मे ही हो गया था परन्तु विवाह के 1 वर्ष पश्चात् ही इनके पति का देहान्त हो गया । इस असामयिक वैधव्य ने इनकी चित्तवृत्ति को भगवद्-भक्ति की ओर प्रेरित कर दिया, जिसके फलस्वरूप ये मीराँ की भाँति ईश्वराधना मे लीन रहने लगी । इनके पदो मे सरलता व तन्मयता के दर्शन होते हैं । यथा—

प्रभू मोकूँ एक बेर दरसन दइए ।[3]
तुम कारन मैं भइ रे दिवानी, उपहास जगत को सहिये ।
हाथ लकुटिया, कन्धे कमलिया, मुख पर मुरली बजैये ।
हीरा मानिक गरथ भण्डारा, माल मुलक नहि चहिये ।
गवरी के ठाकर सुख के सागर, मेरे उर अन्तर रहियै ।।

प्रताप कुंवरि बाई—इनका जन्म सवत् 1873 के लगभग जोधपुर राज्य के जाखण ग्राम में भाटी घराने मे हुआ था । इनके पिता का नाम गोविन्ददास भाटी था । सोलह वर्ष की आयु मे इनका विवाह जोधपुर नरेश महाराजा मानसिह के साथ हो गया, जो स्वय एक उत्कृष्ट कवि थे । ईश्वर-भक्ति की ओर इनका झुकाव बाल्यकाल से ही था एव सवत् 1900 मे पति की मृत्यु के बाद तो इनका मन साँसारिक कार्यों से बिल्कुल ही उचट गया । प्रताप कुंवरि बाई ने कुल मिलाकर

1 मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ ।
2. राजस्थानी भाषा और साहित्य, मेनारिया, पृष्ठ 303.
3 वही, पृष्ठ 270-271.

14 ग्रन्थो की रचना की है जिनमे ज्ञान सागर, प्रताप पचीसी, प्रेम सागर, रामगुण-सागर, रघुवर स्नेह लीला, रघुनाथजी के कवित्त, प्रताप-विनय, हरिजस आदि उल्लेखनीय हैं।[1] इनकी काव्य-रचना की भाषा पिंगल है—(ब्रजभाषायुक्त राजस्थानी) कविता मे प्रसाद गुण है। कुछ पक्तियाँ अवलोक्य है—

> अवधपुर घुमड़ि घटा रहि छाय।
> चलत सुमन्द पवन पुरवाई नभ घनघोर मचाय।
> दादुर मोर पपीहा बोलत, दामिनि दमकि दुराय॥
> × × ×
> कहत प्रताप कुँवरि हरि ऊपर बार-बार बलि जाए॥

सम्मान बाई— इनका जन्म सवत् 1890 के लगभग अलवर के सिहाली ग्राम मे हुआ था।[2] ये प्रसिद्ध कवि रामनाथ कविया की सुपुत्री थी। स्त्री कवियो मे इनका स्थान बहुत ऊँचा है। ये ईश्वर की अनन्य भक्त थी। इनकी रचनाओ मे 'पति-सतक', 'कृस्ण-बाल लीला', 'सोलौ' आदि हैं। 'सोलौ' इनकी राजस्थानी की अनुपम कृति है, जिसकी कुछ पक्तियाँ अवलोक्य है—

> दसरथ सुवन अयोध्या का राजा, कँवर कौसल्या गलौ।[3]
> भूप उदार तिलक रघुकुल को, चहुँ पुर को उजियालौ॥

चन्द्रकला बाई—इनका जन्म सवत् 1923 देहात सवत् 1995 के लगभग हुआ था। ये बूँदी के राव गुलावजी के घर की दासी थी। यद्यपि ये पढी-लिखी न थी तथापि काव्य के मर्म को हृदयगम करने मे पूर्णत समर्थ थी। ये स्वय भी अच्छी काव्य-रचना करती थी। इनकी रचनाओ पर मुग्ध हो सीतापुर जिले के बिसवाँ ग्राम के कवि मण्डल ने इन्हें 'वसुन्धरा रत्न' की उपाधि से विभूषित किया था।

इन्होने 'करुणा-शतक', 'पदवी-प्रकाश', 'रामचरित्र', 'महोत्सव प्रकाश' आदि कुछ ग्रन्थो की रचना की थी परन्तु इनकी कीर्ति शृगार रस प्रधान स्फुट कवित्त व सवैयो के कारण विशेष है। इनका एक सवैया है—

> बाजत ताल मृदग, उमग, उमंग भरी सखियाँ रग बोरी।[4]
> साथ लिए पिचकी कर माँहि, फिरै चहुँधी भरि केसर घोरी।
> 'चन्द्रकला' घिरकै रग अगन आपस माँहि करै चित्त चोरी।
> श्री वृषभानु महीपति मन्दिर लाल-लली मिलि खेलति होरी॥

इनके अतिरिक्त राजस्थान मे और भी अनेक महिला साहित्यकार हुई है, जिन्होने अपनी स्फुट-काव्य रचना से राजस्थानी साहित्य को सवर्द्धित किया है। इनमे हरिजी

1 राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृष्ठ 329, मेनारिया।
2 राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल, परम्परा–अक, पृष्ठ 159 स डॉ नारायणसिंह भाटी।
3. राजस्थानी सबद कोस की भूमिका, पृष्ठ 178-179
4 राज भाषा और साहित्य, मेनारिया, पृष्ठ 335-36

रानी चावड़ी, रानी राठषडीजी, तुलछरायजी, बाघेली विष्णु प्रसाद कुँवरि, जाडेची प्रतापबाला, रानी बाँकावती, गिरिराज कुँवरि, व्रजराज किशोरी, सौभाग्य कुँवरि, बाघेली रणछोड कुंवरी, रसिक बिहारी बनीठनी (महाराजा नागरीदासजी की दासी) बाई खुशाला, उमा, रूपादे, प्रिया सखी, रसिक प्रवीन आदि उल्लेखनीय हैं; जिनका विस्तृत सोदाहरण उल्लेख विवेचन समयाभाव के कारण सम्भव नहीं है।

साहित्य-सृजन की यह परम्परा आज भी निश्शेष नहीं हुई है एवं श्रीमती लक्ष्मीकुमारी चूंडावत प्रभृति महिला साहित्यकारो ने राजस्थानी गद्य की दिशा में स्तुत्य योगदान दिया है। सुश्री लक्ष्मी कुमारी चूंडावत ने प्राचीन ऐतिहासिक व्याख्यानो का अपनी सरस व भावपूर्ण शैली में वर्णन कर राजस्थानी गद्य को एक नया लालित्य प्रदान किया है। उनके द्वारा सकलित राजस्थानी लोकगीतो मे कई प्राचीन रजवाडी लोकगीतों का समावेश हुआ है, जो अन्यथा लुप्त हो जाते। अनुवाद कर राजस्थानी के अनुवाद साहित्य को भी समृद्ध किया है।

मौलिक सृजन के साथ-साथ शोध व अनुसन्धान की दिशा में भी महिलाएँ पीछे नहीं रही हैं। इन विदुषियो मे फ्रैञ्च विदुषी डॉ शार्लोत वोदवील का नाम विशेषतया उल्लेख्य है, जिन्होंने राजस्थानी के प्रसिद्ध लोक-काव्य ढोला-मारू का फ्रेञ्च भाषा मे अत्यन्त सुन्दर अनुवाद किया है तथा उनका वैदुष्यपूर्ण विवेचन प्रस्तुत किया है।

अन्त में, मैं राजस्थान सरकार से अनुरोध करती हूँ कि वह हमारी इन महिला साहित्यकारो द्वारा प्रणीत प्राचीन साहित्य के प्रकाशन की समुचित व्यवस्था कर उसे सर्वसाधारण के लिए सुलभ करने की दिशा मे अविलम्ब कोई ठोस कदम उठाए ताकि उस अज्ञात साहित्य-सम्पदा का सम्यक् मूल्यांकन किया जा सके एवं हमारे साहित्य की अनेक विशृ खल कड़ियो को जोड़ने में सहायता मिले।

11

नारी मर्यादा की सीमा, रामचरितमानस की सीता

गोस्वामी तुलसीदास रचित रामचरित मानस भारतीय लोकव्यवहार एव भारतीय सस्कृति के उदात्त तत्त्वो का अनुपम भण्डार है। इस ग्रन्थ मे तुलसी ने व्यक्ति, घर, परिवार, समाज, धर्म, नीति, शासन, युद्ध तथा जीवन के अन्य बहुत से आयामो की इतनी सन्तुलित एव मर्यादित व्याख्या की है कि काव्य ग्रन्थ होते हुए भी रामचरितमानस भारतीय सामाजिक, धार्मिक एव नैतिक आदर्शो का स्मृति ग्रन्थ माना जाने लगा है। कितने घरों मे इसकी नित्य पूजा होती है। नारी वर्ग मे यह विशेप लोकप्रिय है।

यद्यपि बहुत से आलोचको ने मानस मे उद्धृत नारी सम्बन्धी कुछ पक्तियो के आधार पर तुलसी को नारी-विरोधी सिद्ध करने की चेष्टा की है, किन्तु भारतीय गृहस्थ धर्म एव मर्यादा के अनन्य व्याख्याता तुलसी नारी विरोधी हैं, यह बात कुछ सत्य प्रतीत नही होती। राम-कथा परम्परा के अनेक ग्रन्थो से तुलसी के मानस की तुलना करने पर यह तथ्य बहुत स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आता है, कि नारी के सम्बन्ध मे तुलसी के विचार अन्य रामकथाकार कवियो की अपेक्षा कही अधिक उदार एव अनुभूति प्रवण हैं। सीता के मर्यादित चरित्र की अवतारणा कर तुलसी ने नारी का जो भव्य स्वरूप पाठको के समक्ष प्रस्तुत किया है, वह अप्रतिम है। तुलसी नारी के सम्मान, शील एव मर्यादा के परम सरक्षक हैं। वाल्मीकि-रामायण की सीता और रामचरित-मानस की सीता मे उतना ही अन्तर है जितना यथार्थ और आदर्श मे। तुलसी की सीता का व्यवहार सर्वत्र अत्यन्त मधुर एव लोक व्यवहार सगत है, जब कि वाल्मीकि की सीता का आचरण सामान्य प्रकृति की नारी जैसा है। उदाहरण के लिए राम-वन-गमन प्रसग मे दोनो के चरित्र की तुलना कीजिए। वाल्मीकि-रामायण मे जब राम सीता के समक्ष वन के कष्टो का वर्णन करते हैं

और उसे अयोध्या रहने के लिए कहते हैं तो सीता क्रोधमयी मुद्रा मे राम से कहती है "यदि तुम मुझे अपने साथ वन मे नही ले चलोगे तो मैं विष खाकर या अग्नि मे जलकर या पानी मे डूबकर प्राण दे दूंगी।" आगे सीता राम का उपहास सा करती हुई कहती है—"हे राम! यदि मेरे पिता मिथलेश यह जानते कि तुम आकार मात्र के पुरुष हो, व्यवहार मे स्त्री हो तो वे मेरा विवाह तुम्हारे साथ कर तुमको अपना दामाद न बनाते। हे अनघ! तुम जिनका हित चाहते हो और जिनके कारण तुम्हारे राज्याभिषेक मे बाधा पडी है उन कैकेयी और भरत के वश मे और उसके आज्ञाकारी तुम्ही बनो मैं उसके वश मे होना या उसकी आज्ञानुवर्तिनी बन कर यहाँ रहना नही चाहती।" (तैतीसवाँ अध्याय) सीता के इस कथन मे न लोकव्यवहार का अश है न मर्यादा का। पति के प्रति उसके ये वाक्य बडे कर्णकटु हैं।

राम वन गमन का यही प्रसग धर्म एव नीति के प्रति सर्वदा जागरूक तुलसी ने नारी की पारिवारिक स्थिति एव पत्नी की मर्यादा के अनुकूल बहुत ही मधुर एव मर्मस्पर्शी रूप मे प्रस्तुत किया है। राम वन गमन की चर्चा सुनते ही सीता सर्व प्रथम कौशल्या के पास जाती हैं एव उनकी चरण वन्दना कर सिर नीचा करके बैठ जाती है। मन मे भावो का अथाह सागर उमड रहा है। पर कुछ कहने की अपेक्षा मन ही मन विचार कर रही है—

> चलन चहत वन जीवन नाथू। केहि सुकृती सन होइहि साथू।
> की तन प्रान कि केवल प्राना। विधि करतब कछु जाइ न जाना॥

राम के वन जाने पर मेरे शरीर और प्राण दोनो राम के साथ जाएँगे या केवल प्राण ही जाएँगे। ईश्वर की गति कौन जानता है? नाखून से धरती कुरेदती हुई सीता की आँखो से अश्रुधारा प्रवाहित हो रही है, जिसे देखकर कौशल्या का मन भर आता है। वह राम से कहती है—

> तात! सुनहु सिय अतिसुकुमारी। सास ससुर परिजनहि पियारी॥
> पिता जनक भूपाल मनि, ससुर भानुकुल भानु।
> पति रवि-कुल-कैरव-विपिन विधु गुन रूप निधानु॥

ऐसी कोमल, ऐसे उच्चवश मे जन्मी, इतने विख्यात कुल मे ब्याही, राम जैसे पति की पत्नी सीता वन जाना चाहती है, हे रघुनाथ? तुम्हारी क्या आज्ञा है? परिवार की मर्यादा के अनुकूल राम माता के समक्ष सीता को कुछ भी समझाने मे सकोच का अनुभव करते हैं। वे चाहते हैं कि सीता अयोध्या रहकर सास ससुर की सेवा करे। वन मे अनेक कष्ट हैं। इस अवसर पर सीता का जो व्यवहार एव कथन मानस मे अंकित है वह बहुत ही मार्मिक एव नारी के शील और मर्यादा की सीमा का परिचायक है। सीता सबके बीच लज्जा बैठी समझ नही पाती कि पति की आज्ञा के विपरीत कैसे कहे कि वह वन जाना चाहती है। पति के मनोहर कोमल वचन सुनकर उसके नेत्र डबडबा आते हैं उत्तर देते नही बनता। तुलसी लिखते हैं—

उतर न आव विकल वैदेही। तजन चहत सुचि स्वामि सनेही।
बरबस रोकि विलोचन वारी। धरि धीरज उर अवनिकुमारी।
लागि सासु पग कह कर जोरी। छमवि देवि बड अविनय मोरी।
दीन्ह प्रान पति मोहि सिख सोई। जेहि विधि मोर परम हित होई।
मैं पुनि समुझि देखि मन माहीं। पिय वियोग सम दु ख जग नाहीं।

पुन बडे विनम्र शब्दो मे राम से कहती है—

जँह लगि नाह नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहि तरनि ते ताते।
जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसेहि नाथ पुरुष बिनु नारी।
वन दुख नाथ कहे बहुतेरे। भय विषाद परिताप घनेरे।
प्रभु वियोग लवलेस समाना। सब मिलि होहिं न कृपानिधाना।
अस जिय जानि सुजान सिरोमनि। लेइअ सग मोहि छाडिय जनि।

इन वचनो मे न कही उग्रता है, न धृष्टता, न परिवार के किसी व्यक्ति के लिए वैमनस्य की भावना। पति के प्रति कठोर वचन बोलना सीता जानती ही नही। न केवल पति के साथ अपितु समस्त परिवार के साथ उसका व्यवहार परम शालीन है। उसे अपने कर्त्तव्याकर्त्तव्य का पूरा ध्यान है। वन के लिए यदि सीता सुकुमारी है, तो राम क्या उतने ही सुकुमार नही हैं ? यदि राम वल्कल वस्त्र धारण कर सकते है, तो उनकी सहधर्मिणी सीता अवश्य वन के कष्ट झेलने मे समर्थ है। इस भाँति तुलसी ने सीता के शील और मर्यादा का सर्वत्र सुन्दर चित्र उपस्थित किया है। पति-पत्नी के मध्य जैसे सयत और भव्य व्यवहार की कल्पना तुलसी के मस्तिष्क मे थी, राम सीता का पारस्परिक व्यवहार उसके सर्वथा अनुकूल है।

सीता की अग्नि परीक्षा की घटना भी तुलसी ने जिस रूप मे प्रस्तुत की है वह सीता के माध्यम से नारी प्रतिष्ठा एव नारी सम्मान की परम निदर्शन है। वाल्मीकि-रामायण मे रावण के घर से लौटी सीता के प्रति राम के वचन जितने हृदय-विदारक है, सीता की वाणी भी उतनी ही कठोर हे। राम के क्रोध भरे वचनो से दुखी होकर रोती हुई सीता राम से कहती है, "हे वीर ! तुम ऐसी अनुचित, कर्णकटु और रूखी बातें उस तरह क्यो कहते हो जिस तरह गँवार आदमी अपनी गँवार स्त्री से कहा करते है। यदि तुम्हें मेरे चरित्र पर सन्देह था तो जब तुमने मुझे देखने के लिए हनुमानजी को लका भेजा था तभी उनके द्वारा परित्याग की बात मुझसे क्यो नही कहला भेजी। यदि उस समय यह बात मालूम हो जाती तो तुम्हारी त्यागी हुई मैं अपने प्राण त्याग देती। तुम्हे तब व्यर्थ परिश्रम न उठाना पडता और न अपने हितैषियो के प्राणो को सन्देह मे डालना पडता। तुमने ओछे मनुष्यो की तरह क्रोध के वशीभूत हो साधारण स्त्रियो की तरह मुझे भी समझ लिया है। मै जनक की पुत्री हूँ, इस बात का भी ध्यान नही रखा।"

तुलसी का भावुक हृदय नारी की इतनी प्रताडना सहन नही कर सकता। उन्होंने अग्नि परीक्षा की चर्चा बहुत सक्षेप मे करके सीता के स्वाभिमान, मर्यादा एव पातिव्रत-

धर्म का आदर्श उपस्थित किया है। राम उन्हें सादर लंका से बुलाने का आदेश देते हैं जिसे सुनकर भालु, कपि आदि प्रसन्न होते हैं, देवता फूल बरसाते हैं, तथा सीता के असली स्वरूप को जो पहले अग्नि में रखा था अब भीतर के साक्षी भगवान उसको प्रकट करना चाहते हैं। राम सीता की अग्नि परीक्षा का आदेश देते हैं। प्रभु के वचनों को सिर चढ़ाकर मन, वचन और कर्म से पवित्र सीता लक्ष्मण से कहती हैं कि, 'मेरे धर्माचरण में तुम सहायक बनो और तुरन्त आग तैयार करो।" अग्नि में प्रवेश करने से पूर्व आग की लपटों को देख प्रसन्नवदना सीता कहती है—

> जो मन वच क्रम मम उर माहीं। तजि रघुवीर आन गति नाहीं।
> तो कृसानु सब के गति जाना। मो कहुँ होउ श्री खण्ड समाना।

अग्नि ने शरीर धारण कर श्री सीताजी का हाथ पकड़ उन्हें श्रीराम को वैसे ही समर्पित किया जैसे क्षीर सागर ने विष्णु भगवान् को लक्ष्मी समर्पित की थी। देवता हर्षित होकर फूल बरसाने लगे। इस प्रकार अग्नि परीक्षा के अप्रिय काण्ड को तुलसी ने बहुत ही मर्यादित रूप में प्रस्तुत किया है। सीता के हृदय में न कटुता है और न वह राम को वैसी कड़वी बातें कहती है जैसी वाल्मीकि-रामायण में वर्णित हैं। माना कि यह आदर्श तुलसी की दृष्टि में उनके सम्मान एवं मर्यादा का परिचायक था, क्योंकि पति-पत्नी का पारस्परिक दुर्व्यवहार तुलसी की दृष्टि में लोक-सम्मत नहीं था।

रामचरित मानस में जहाँ-जहाँ सीता का चरित्र वर्णन किया गया है वहीं-वहीं वह अद्भुत शालीनता एवं मर्यादा की प्रतिमूर्ति दिखाई देती है। जनक वाटिका में जब राम के दर्शन का प्रसंग आता है तो सीता संकोच से पार्वती का ध्यान करने लगती हैं। बड़े संकोच से सखियों के कहने पर वह राम की ओर देखती है। हृदय में उनके प्रति प्रेम उमड़ रहा है, पर सखियों का संकोच, देर हो जाने पर माता का भय, उसे घर लौटाने के लिए विवश कर देता है। स्वयम्वर में वरमाला के समय गुरुजनों और बड़े भारी समाज के बीच आकर सीता एकदम सकुचा जाती है। रामचन्द्र की ओर देखने की बजाय सखियों की ओर देखने लगती है। लज्जा और गुरुजनों की मर्यादा से सीता सब ओर इस तरह देख रही थी मानों डरी हुई 'मृग छौनी' इधर-उधर देखती हो। वन गमन के समय रास्ते में जब गाँव की स्त्रियाँ सीता से नाम और लक्ष्मण का परिचय पूछती हैं, तब नारी सुलभ लज्जा और लोकव्यवहार का सुन्दर दृश्य तुलसी ने उपस्थित किया है। गाँव की औरतें पूछती हैं—

> कोटि मनोज लजावन हारे। सुमुखि कहहु को आहिं तिहारे।
> सुनि सनेहमय मंजुल बानी। सकुची सिय मन महुँ मुसकानी।
> तिन्हहि बिलोकि बिलोकति धरनी। दुहुँ सकोच सकुचत बरबरनी।

सीता को गाँव की इन भोली औरतों के प्रश्न का उत्तर देने में बड़ा संकोच रहा है। यदि वे उत्तर देती हैं तो प्रगल्भता प्रकट होती है और नहीं देतीं तो

अहङ्कार प्रकट होता है। इसी असमञ्जस मे पड़ी वे मात्र इशारे से उन्हे अपना और राम का सम्बन्ध स्पष्ट कराती है—

सहज सुभाय सुभग तन गोरे। नाम लखनु लघु देवर मोरे।
बहुरि बदन बिधु अंचल ढाँकी। पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी।
खञ्जनु मञ्जु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहि सिय सैननि।

मुँह को आँचल से ढक कर, राम की ओर तिरछे नेत्रो से देख कर सीता ने इशारे से उन्हे बताया कि वे मेरे पति हैं। तुलसी नारी की ऐसी मर्यादा के पक्षपाती है। नारी का वाचाल होना या धृष्ट होना वे पसन्द नही करते।

चित्रकूट मे जब अयोध्यावासी तथा जनकपुर के लोग राम से भेंट करने जाते है तब सीता अपने माता-पिता के पास रात्रि को इसलिए विश्राम नही करती कि पति तपस्वी रूप में पृथ्वी पर सोएँ और पत्नी उससे पृथक् ठाठबाट मे रहे यह अनुचित है। मर्यादा की मूर्ति सीता के इस आचरण से प्रसन्न होकर राजा जनक हर्षपूर्वक कहते हैं—

पुत्रि पवित्र किए कुल दोऊ। सुजस धवल जग कह सब कोऊ।

अपने मर्यादापूर्ण आचरण से सीता ने पति-कुल एव पिता-कुल दोनो को पवित्र कर दिया। रामचरित मानस की सीता के उज्ज्वल यश की गाथा लोग सुनते और सुनाते नही थकते। मर्यादा का एक और सुन्दर उदाहरण वहाँ दृष्टिगोचर होता है जहाँ वन मे राह चलते सीता पति के चरण-चिह्नो को बचाती हुई उनके बीच-बीच मे पग रखकर चल रही है जिससे पति के चरण-चिह्नो पर पैर रखने की धृष्टता न हो जाय। ये चरण तो सर आँखो पर धारण करने योग्य हैं—

प्रभु पद रेख बीच बिच सीता।
धरति चरन मग चलति सभीता।।

धन्य है तुलसी जिन्होने सीता के मर्यादापूर्ण आचरण का गौरवपूर्ण वर्णन करके उन्हें इतिहास की सबसे अधिक मर्यादाशील नारी का उच्चतम पद प्रदान किया है।

—:—

12

विराज-वहू

(शरद्चन्द्र चटोपाध्याय)

रेडियो नाट्य रूपान्तर

पूटी (रोती आवाज मे)—दादा-दादा, देखो भाभी मुझे कानी कहती है और यह देखो मेरे गाल भी कैसे लाल कर दिए हैं।

नीलाम्बर (हँसते हुए)—नही नही, रोते नही है। और मेरी सुन्दर सी आँखो वाली बहिन को जो कानी कहती है वह खुद कानी है। आ ! मेरे साथ आ ! अभी सारी बातें पूछता हूँ। (आवाज़ लगाता है) विराज, ओ विराज।

विराज—आती हूँ। (पूटी को नीलाम्बर के पास खडी देखकर)—अच्छा तो बहिन की फरियाद लेकर मुझे डाँटने आए हो। इसने तो आज मार खाने का काम किया है। गौशाला मे जाकर बछडे को खोल दिया और खडी देखती रही। गाय ने एक बूंद भी दूध नही दिया।

नीलाम्बर (हँसकर)—अरे भाई, इस उम्र मे तुम भी तो ऐसी ही थी। याद है तुम्हें, एक दिन तुमने पिंजडा खोल कर माँ का पालतू सुग्गा उडा दिया था।

विराज—रहने दो मजाक की बातें। मैं क्या तब इतनी बडी थी ? अरे, पूटी—खडी क्या देख रही है। जा, रसोई मे से पखा ले आ। मैं तेरे भाई के लिए भोजन ले आती हूँ।

नीलाम्बर—सुनो, क्या बनाया है आज ?

विराज—क्या बनाती, तुमने तो सब्जी के सिवा सब कुछ खाना ही छोड दिया है। सब्जी यहाँ मिलती नही। गाँव के पोखर मे मछली मिलती थी वह भी नहीं खाते। भात के साथ रोज-रोज एक ही सब्जी खाने से कही पेट भरता है ! आज अगर तुम पेट भर कर नहीं खाओगे तो तुम्हारे चरणो में सिर पटक कर प्राण दे दूंगी।

नीलाम्बर (हँसकर)—अच्छा ! ऐसी बात है।

विराज—हँसते क्या हो ? तुम्हारा शरीर देखकर मेरे दिल मे आग लग जाती है । दिन दिन तुम्हारा खाना कम होता जा रहा है । जरा देखो तो, गले की हड्डी दिखाई देने लगी है ।

नीलाम्बर—अरे, यह तो तुम्हारे मन का भ्रम है, विराज !

विराज—मन का भ्रम है ? यदि तुम एक दाना कम खाओ तो मैं बता सकती हूँ । रत्ती भर भी रोग हो तो तुम्हारा शरीर छूते ही मैं समझ जाती हूँ । पूटी ! ला पखा मुझे दे । तू जा, खेल ।

नीलाम्बर—मेरी पूटी कितनी भोली है । प्यार से हर वक्त मुझ से चिपटी रहती है । अब तो मुझे इसकी शादी की चिन्ता है ।

विराज—इतनी छोटी उम्र मे ब्याह होना अच्छा नही ।

नीलाम्बर—क्यो ? तुम तो नौ साल की ही यहाँ आ गई थी ।

विराज—मेरी बात अलग है । मेरी कोई दुष्टा जिठानी, नन्द थी नही । दस साल की गृहिणी बन गई थी । पर दूसरे घरो मे देखती हूँ कि छोटी उम्र मे जो बकझक और मारपीट शुरू हो जाती है वह कभी बडे होने पर भी मिटती नही । मैं पूटी का विवाह अभी नही करूँगी ।

नीलाम्बर (खाने से उठते हुए)—अच्छा तुम्ही ठीक हो ?

विराज—यह क्या ? बस खा चुके । तुम मेरा सिर ही खाओ, जो उठो । पूटी, वह सन्देश तो ले आ । वह तो तुम्हे खाने ही पड़ेंगे ।

नीलाम्बर—भाई, तुम्हारे खिलाने के अत्याचार से डर कर मेरा तो मन होता है कि कही वन मे चला जाऊँ ।

पूटी—हाँ, दादा मैं भी चलूँगी ।

विराज (धमकाते हुए)—चुप रह कलमुँही । खाएँगे नही तो जीएँगे कैसे । सुसराल जाने पर देखूँगी, कैसे शिकायत करेगी ।

(करीब डेढ महीने बाद)

नीलाम्बर—विराज ?

विराज—हाँ । कहो तुम्हारी तबियत आज कैसी है ?

नीलाम्बर—आज तो मुझे बिल्कुल बुखार नही है ।

विराज—तुम्हारा तेज बुखार देख कर मेरे तो प्राण ही सूख गए थे । ओहो, पाँच दिन कितना तेज बुखार ! माँ शीतला से विनती की थी कि यदि तुम्हे अच्छा कर दिया तो तुम्हारी पूजा करके ही खाऊँगी, पीऊँगी, नहीं तो उपवास करके प्राण दे दूँगी । (कहते-कहते विराज रो पडी)

नीलाम्बर—क्या ? तुम उपवास कर रही हो ? यह सब तुम्हारा पागलपन है विराज ।

विराज—पागलपन है या कुछ और, यह मेरे देवता जानते हैं या मैं । (रोने की ध्वनि) अगर तुमने नारी-जन्म पाया होता तब जानते कि पति क्या वस्तु है । तब जान पाते कि पति के बीमार होने पर स्त्री के भीतर क्या होने लगता है ।

नीलाम्बर (आवेश में)—वि. रा ज !

विराज—सच मानो, स्त्री के लिए पति से बढ़ कर और कोई नहीं है। कोई नहीं। माँ बाप के उठ जाने का कष्ट होता है, पर स्वामी के चले जाने पर स्त्री का सर्वस्व लुट जाता है। ईश्वर न करे, यदि तुम्हें कुछ हो जाता तो माँग का सिन्दूर पुछने से पहले ही मैं पत्थर से सिर फोड़ डालती।

नीलाम्बर—(कराहते हुए)—वि रा . ज !

विराज—विधवा स्त्री का जीना भी कोई जीना है। जिधर जाओ घृणा, तिरस्कार और लांछन के सिवाय कुछ भी नहीं।

नीलाम्बर—क्यों व्यर्थ ही दुखी होती हो। देखो ना, मैं तो बिल्कुल अच्छा हो गया। चल फिर सकता हूँ। (कुछ रुककर) अरे हाँ, याद आया, सवेरे मोती आया था। उसके लड़के को शीतला निकली है। वह मुझे अपने घर ले जाकर दिखाना चाहता है। कहता है तुम्हारे पाँवकी रज छू कर वह जरूर अच्छा हो जाएगा। बिचारा बहुत रो रहा था। मुझे एक बार उसके घर जाना ही पड़ेगा। मैंने उसे जुबान दी है।

विराज—(घबराकर)—तुमने उसे जुबान क्यों दी ? तुम क्या सोचते हो कि तुम्हारे प्राण अकेले तुम्हारे ही हैं ? उसमें बोलने का किसी को अधिकार नहीं।

नीलाम्बर—ओ हो, तुम तो जरा सी बात में नाराज होने लगती हो। सच पूछो मुझ से उसका रोना देखा नहीं गया।

विराज—ठीक है। उसका रोना तुमने देखा किन्तु मेरा रोना देखने वाला कोई संसार में है ? पुरुषों का क्या ? चार दिन, चार रात बिना खाए, बिना आँख झपकाए काट दो। यह उसीका बदला है ना ? सुन लो, तुम चाहे कितना तंग कर लो, मैं तुम्हें यह रोगी शरीर लेकर हर्गिज नहीं जाने दूँगी।

× × × ×

(तीन साल बाद)

विराज (नीलाम्बर से)—मैं तुमसे एक बात पूछना चाहती हूँ।

नीलाम्बर—क्या ?

विराज—बता सकते हो, क्या खाने से आदमी मर जाता है ? (कुछ रुककर) बोलते क्यों नहीं ? नहीं बता सकते तो यह बताओ कि तुम दिन-दिन सूखते क्यों जा रहे हो ?

नीलाम्बर—कौन कहता है कि मैं सूखता जा रहा हूँ।

विराज—इसमें भी क्या किसी के बताने की जरूरत है ? मेरी आँखें हैं। मैंने तुम्हें कितना समझाया था कि पूटी का ब्याह ऐसी जगह न करो, लेकिन तुम नहीं माने। अब न हमारे पास गहने हैं न नकद। जमीन भी गिरवी पड़ी है। ऊपर से मकान पर कर्ज है। हर महीने दामाद की पढ़ाई का खर्चा कहाँ से लाएँ ? पूटी की भलाई की चिन्ता में घुल घुल कर तुम मेरा सर्वनाश कर रहे हो। यह मैं नहीं होने दूँगी। मेरी बात मानो, दो चार बीघे जमीन बेच कर रुपयों का प्रबन्ध कर लो और दामाद को [illegible] छुड़ाओ।

नीलाम्बर—किन्तु विराज, जमीन बेचकर हमारे पास रह क्या जाएगा ?

बिराज—हम दो प्राणी हैं। कोई बाल-बच्चे नही। देवर अलग हो ही गए हैं। किसी न किसी तरह गुजर हो ही जाएगा। अगर कुछ नही हुआ तो भीख माँग कर दिन बिताएँगे। वैष्णव ठाकुर हो ना तुम।

नीलाम्बर—भीख माँगना क्या आसान है ? भीख पाने के लिए न जाने क्या क्या करना पडता है ?

बिराज—अच्छा छोडो कुछ और बात करें। ससार मे स्त्री सती और असती दोनो तरह की होती है। असती स्त्री मैंने आज तक आँखो से नही देखी। वह कैसी होती है ? क्या सोचती है ? तुमने उन्हे देखा है ?

नीलाम्बर—हाँ। हाँ! देखा है।

बिराज—वे क्या ऐसे ही जिस किसी के सामने बैठकर बात करती हैं जैसे मैं तुमसे करती हूँ ?

नीलाम्बर—यह मैंने नही देखा।

बिराज—सच मानो, इस विचार मात्र से मेरे रोगटे खडे हो जाते है। पर छोडो इस भद्दी चर्चा को। तुम तो यह बताओ कि सावित्री-सत्यवान की कथा क्या सत्य है ?

नीलाम्बर—सत्य क्यो नही है ? जो सावित्री के समान सती है तो निश्चय ही ऐसा कर सकती है।

विराज—तब मैं भी कर सकती हूँ।

नीलाम्बर—पर क्या तुम ऐसी सती हो ? वह तो देवी थी।

बिराज—भले ही हो। सतीत्व मे मैं उनसे कम नही। मेरी जैसी सती स्त्रियाँ और भी हो सकती है, किन्तु मन से और ज्ञान से मुझ से बढ कर सती और कोई है भी, मै यह मानने को तैयार नही। मैं सावित्री से तिल भर कम नही हूँ।

नीलाम्बर—तब तो तुम भी जरूर वैसा कर सकती हो।

बिराज (रोते हुए)—मैं तुम्हारे पैर छूती हूँ। मुझे आशीर्वाद दो कि होश सम्भालने के बाद तुम्हारे चरणो के सिवाय ससार मे और कुछ जाना हो और वास्तव मे मैं सती हूँ तो उस समय मैं सावित्री की तरह से तुम्हें लौटा सकूँ।

नीलाम्बर (घबराकर)—विराज! आज तुम्हे क्या हो गया है ?

बिराज—आशीर्वाद दो कि तुम्हारे पैरो पर सिर रखकर मरूँ जिससे माथे का सिन्दूर और चूडियाँ पहने हुए चिता पर सो सकूँ। (रोती है)।

नीलाम्बर—विराज, आज तुम्हे हो क्या गया है ? क्यो इस तरह की हारी हुई बातें कर रही हो तुम। किसी ने कुछ कहा है ?

बिराज—यदि इतने कष्ट मे भी आदमी नही हारेगा तो कब हारेगा ? मेरे मकान मे खडा होकर महाजन तुम्हारा अपमान कर जाए और मै उसे सुनकर सहन कर लूँ—यह मेरे बस की बात नही। तुम आज ही इसका कुछ उपाय करो, नही तो मैं आत्महत्या कर लूँगी।

नीलाम्बर—विराज, इतनी अधीर होने से क्या होगा ? यदि कल फसल अच्छी हुई तो छुड़ा ही लूंगा। वेचकर क्या हाथ आएगा ?

विराज—फसल का क्या ठिकाना है ? सूद पर सूद लग रहा है। दिन-रात लोगों के तकाजे आ रहे हैं। हर समय चिन्ता करके तुम्हारी सोने की काया मिट्टी होती जा रही है। तुम ही बताओ, मैं इसे कैसे सहन कर सकती हूँ। पूटी के पति को कितने दिन पढाई का खर्चा देना होगा ?

नीलाम्बर—एक साल और, फिर तो वह डॉक्टर हो जाएगा।

विराज—उनके यहाँ किसी बात की कमी नहीं है। फिर भी जोक की तरह हमारा खून पीए जा रहे हैं। यदि वे अपने लड़के को नहीं पढा सकते तो हम कहाँ से लाएँ ? तुम कुछ भी कहो, मैं तुम्हें अब उधार नहीं करने दूँगी।

नीलाम्बर—पर विराज, सालिगराम को सामने रखकर जो शपथ खाई है, उसका क्या होगा ?

विराज—यदि सालिगराम सच्चे देवता हैं तो वे अवश्य हमारा कष्ट जानते होंगे। मैं भी तुम्हारा आधा भाग हूँ। यदि किसी बात से तुम्हें पाप लगेगा तो मैं जन्म-जन्म नरक भोगूंगी। तुम किसी बात से मत डरो। हाँ, मैं सच कहती हूँ। मुझ से तुम्हारा दुःख नहीं देखा जाता। तुम, तुम अपनी तरफ न देखो, मेरी ओर तो एक बार देखो। क्या मुझे रास्ते की भिखारिन बनाकर छोड़ोगे ? क्या यह तुम से सहा जाएगा ? (रोती है)।

× × × ×

(दरवाजे के बाहर दासी सुन्दरी के पुकारने की आवाज)

सुन्दरी—बहूजी, क्या चूल्हा सुलगा दूँ ?

विराज—कौन-सुन्दरी ?

सुन्दरी—हाँ बहूजी !

विराज—जला दे चूल्हा, पर मैं कुछ नहीं खाऊँगी। उन्हीं के लिए कुछ बनाना होगा।

सुन्दरी—बहूजी, कितने दिनों से तुमने शाम का खाना छोड़ रखा है। देखो, तुम्हारा कंचन सा शरीर सूखकर आधा रह गया है। बहूजी ! इतना सुन्दर रूप भगवान क्या सब को देता है ? तुम्हें तो इसकी कुछ परवाह ही नहीं।

विराज—तू बेकार की बात मत किया कर सुन्दरी।

सुन्दरी—तुम इसे बेकार की बात कहती हो बहूजी। जरा उनके दिल से पूछो जो तुम्हारे सुन्दर मुख की एक झाँकी के लिए तरसते रहते हैं।

विराज—चुप रह कलमुँही। फिर जमींदार के लड़के की बात छेड़ दी। बीती बात को छेड़ने की कोई जरूरत नहीं।

सुन्दरी—बीती कहाँ से ? जब से राजेन्द्र बाबू ने तुम्हें घाट पर पानी भरते देखा है तब से बार-बार तुम्हारी बात करते हैं।

विराज—तू वहाँ जाती क्यों है ?

सुन्दरी—बहूजी, वे इस मुल्क के जमीदार हैं। हम गरीबो की क्या बिसात जो उनके बुलाने पर न जाएँ।

विराज—तू कितनी ही बार उस जगह आई गई है। तूने बहुत-सी बातें भी की होगी, पर मुझे कुछ भी नही बताया।

सुन्दरी—बहूजी, तुम से किसने कहा कि मैंने अनेक बातें की हैं।

विराज—मेरे क्या आँख-कान नही हैं। बख्शीश के भी दस रुपये तुझे वही से मिले हैं। सुन्दरी, मुझ से तेरा यह छल नही चलेगा। तू रुपये लेकर क्यो नीच काम करती है? तू दुखिया है। कही काम-धन्धा करके गुजारा कर ले। जो कुछ किया वह अब लौट नही सकता, पर पाँच आदमियो का सर्वनाश मत कर। जिन हाथो से तूने ये रुपये लिए उन हाथो का पानी पैर पर डालने मे भी मुझे घृणा होती है। तेरी नौकरी समाप्त हुई। कल से इस घर मे पैर मत रखना, समझी?

सुन्दरी (घबराकर)—बहूजी!

विराज—जा, दूर हो जा मेरी नजरो से।

(कुछ दिन बाद)

नीलाम्बर—विराज! मैं तुम्हे दासी का काम नही करने दूंगा। जब तक मैं दुनिया मे हूँ तब तक मान-अपमान भी है। गली-मोहल्ले के लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे?

विराज—मैं समझ गई। तुम्हारा असली दु ख लोगो का भय है, मेरे दु ख कष्ट नही। यदि मेरे दु ख की तुम्हे परवाह होती तो मेरी क्या एक बात भी नही मानते? तुम केवल अपनी बात सोचते हो। आज मुझे काम करते देखकर तुम्हे शर्म आती है। कल तुम्हें कुछ हो जाए तो परसो से मुझे दो मुट्ठी अन्न के लिए दूसरो के घर जाकर काम करना पडेगा। किन्तु, किन्तु तुम यह अपनी आँखो से क्यो देखोगे? फिर शर्म भी तुम्हे क्यो आएगी? यही बात है ना।

नीलाम्बर—कैसी बातें कर रही हो विराज! तुम्हारा कष्ट मैं स्वर्ग मे बैठ कर भी सहन नही कर सकता।

विराज—पहले मैं यही समझती थी। किन्तु दु ख उठाए बिना जैसे दु ख अनुभव नही होता, वैसे ही समय आए बिना पति के प्यार की जाँच नही होती।

नीलाम्बर—विराज, क्या कह रही हो तुम?

विराज—मैं तुम से बहस करना नही चाहती। तुम्हे शायद याद हो कि बचपन मे मैं एक दिन सिर दर्द के मारे सो गई थी। दरवाजा खोलने मे देर हो गई, इस पर तुम मुझे मारने दौडे थे। मेरी तबियत खराब होने के बाद भी तुम्हे विश्वास नही हुआ। मैंने तब से प्रतिज्ञा कर ली थी कि अपनी बीमारी की बात तुम्हारे सामने नही कहूँगी।

नीलाम्बर—नही विराज, इतना अन्याय नही करो। सच बताओ तुम्हे क्या बीमारी है? तुम्हें बताना ही पडेगा।

विराज—कहा ना, कुछ भी तो नही हुआ। बिल्कुल अच्छी हूँ।

नीलाम्बर—नही, तुम अच्छी नही हो। नहीं तो इतनी पुरानी बात तुम्हे

क्यो याद आतीं ? विराज ! इस जन्म में दुश्मन भी तुम्हारा कोई दोष नही बता सकते । पर पहले जन्म में अवश्य तुमने कोई पाप किया होगा । नही तो ऐसा कभी नही होता ।

विराज—क्या नहीं होता ?

नीलाम्बर—यही कि राजरानी सा सुन्दर रूप लेकर तुम मुझ जैसे मूर्ख आदमी के हाथो न पडती ।

विराज—तुम सोचते हो कि तुम्हारे मुख से यह बात सुनकर मुझे बडा हर्ष होता है ? तुम्हारा मुख देखने को जी चाहता है ? रूप-रूप-रूप, सुनते-सुनते मेरे कान पक गए । ओह, मैं बचपन से तुम्हारे पास पडी हुई हूँ, क्या मुझ में रूप के सिवाय तुम्हे और कुछ नही दिखाई देता ?

नीलाम्बर (घबराकर)—वि....रा ...ज

विराज (आवेश मे आकर)—क्या मैं रूप के जाल मे तुम्हे बांधना चाहती हूं ? रूप का व्यवसाय करती हूँ । मैं गृहस्थ की लडकी हूँ, गृहस्थ की बहू हूँ । मुझे ये सब बातें सुनाते तुम्हें लज्जा नही आती ?

नीलाम्बर—इतनी नाराज क्यों होती हो विराज ! मैंने कोई बुरी बात तो नही कही ।

विराज—अब भी कहते जाते हो कि बुरी बात नही है । बड़ी बुरी बातें हैं, इसीलिए मैंने सुन्दरी को ..

नीलाम्बर—क्या ? इतने से दोष पर तुमने उसको अलग कर दिया ?

बिराज—देखो, बहस मत करो । निकालने लायक दोष पर ही उसे निकाला है । असल मे बात क्या थी यह तुम्हारे सुनने की नही है ।

नीलाम्बर—अच्छा ! अच्छा मत सुनाओ । मैं सुनना भी नही चाहता ।

× × × ×

(आधी रात गए दरवाजे पर छोटी बहू मोहिनी की आवाज)

मोहिनी—जीजी !

बिराज—कौन ? छोटी बहू ।

मोहिनी—हाँ जीजी, मैं मोहिनी हूँ ।

बिराज—इतनी रात गए ? कैसी हो बहू ?

मोहिनी—जीजी मेरे पास आओ । मैं तुम्हें एक बहुत जरूरी बात बताने आई हूँ ।

विराज—क्या बात है ?

मोहिनी—जेठजी पर नालिश हो गई है जीजी । कल उनके नाम सम्मन निकलेगा । अब क्या होगा जीजी?

बिराज—क्या ? नालिश हो गई । किसने की है नालिश ?

मोहिनी—भोला मुकर्जी ने । जीजी, तुम अपनी छोटी बहन की एक बात मानोगी ?

विराज—क्यो नही मानूंगी ।

मोहिनी—यह मेरे सोने का हार है, इसे बेच कर या गिरवी रख कर सब कर्जा चुका दो ।

बिराज—नही बहिन, यह नही हो सकता । देवरजी सुनेगे तो क्या कहेगे ?

मोहिनी– तुम विश्वास करो, मैं उन्हे कभी नही बताऊँगी जीजी । तुम इसे ले लो । स्वीकार कर लो ना । मैं तुम्हारे पैरो पडती हूँ । ले लो ।

बिराज—आजकी बात मुझे हमेशा याद रहेगी । आज मैने तुम्हे पहचाना है बहू । तुम्हारा हृदय कितना कोमल है । किन्तु मुझे दुःख है बहू, तुम्हारा दिया यह हार मैं नही ले सकूंगी । सभी बातें तुम नही जानती । स्वामी से छिपा कर कोई काम करना किसी स्त्री के लिए उचित नही है । इसमे हम दोनो को पाप लगेगा । अच्छा–अब तुम जाओ । रात बहुत हो गई है ।

मोहिनी—अच्छा ! चलती हूँ !

× × × ×

(एक साल बाद)

नीलाम्बर—विराज ! आजकल तुम ऐसी क्यो होती जा रही हो ? एकदम बदल गई हो ।

बिराज—समय बदल जाने पर बदलना ही पडता है । इस बार भी फसल खराब हुई । घर गिरवी हो गया ।

नीलाम्बर—हाँ ! तुम ठीक कहती हो । अपना सगा भाई भी देखो कितना बदल गया है ?

बिराज—कौन ? देवर जी !

नीलाम्बर—हाँ । कल मैंने पीताम्बर से पूटी को बुला लाने को कहा था । आखिर वह भी उसका सगा भाई है । मैंने उससे कहा–पूटी के ससुर मेरी चिट्ठी का जवाब नही देते । शायद वे मुझसे नाराज हैं । तुम भी एक बार प्रयत्न कर के देख लो । शायद तुम्हारे बुलाने पर आ जाए । उसे देखने के लिए प्राण तडपते हैं ।

विराज—फिर देवर जी ने उसका क्या जवाब दिया ?

नीलाम्बर—वह बोला–"तुम्हारे रहते मै कोई प्रयत्न नही कर सकता । ब्याह करते समय क्या मुझसे पूछा था ? जैसे पूटी के ससुर है वैसे मेरे भी । वह पूटी को नही भेजना चाहते तो मैं उनके विरुद्ध कुछ नही कर सकता ।"
उसकी बात पर मुझे बडा गुस्सा आया । मैंने उससे कह दिया कि अगर तुम कुछ नही कर सकते तो इसी वक्त मेरी आँखो के सामने से चले जाओ ।

बिराज—तुमने यह अच्छा नही किया । सब कुछ जानते हुए भी भाई के साथ क्या ऐसा झगडा किया जाता है ?

नीलाम्बर—क्यो ? कब तक दबता रहूँ । मैं सब कुछ सह सकता हूँ लेकिन किसी की धूर्तता नही सही जाती ।

विराज —तुमने कभी यह सोचा है कि यदि वे घर से हाथ पकड कर निकाल दे तो हम कहाँ खडे होंगे ? तुम केवल टोल बजाने और गाने बजाने मे मस्त रहते हो। तुम्हें किस बात की फिकर है ? तुम तो एक पेड के नीचे पडे रह सकते हो, मैं तो नही रह सकती।

नीलाम्बर (क्रोध से)—विराज !

विराज—औरतो को लोक लज्जा, शर्म होती है। किसी न किसी के आश्रय मे मुझे तो रहना ही पडेगा।

नीलाम्बर—विराज, मैं तुम्हारा पति हूँ, कोई खिलौना नही कि जिसे जब चाहो उठा लाओ और फैंक दो।

विराज—हे भगवान मै क्या करूँ। एक बार मुँह उठा कर देखो, जो आदमी कोई दोष पाप नहीं करना जानता उसको और कष्ट नही दो प्रभु।
मैं और नही सह सकूँगी। नही सह सकूँगी।

× × × ×

(बिराज पति से छिप कर रात को साँचे बनाने का काम करती है। साँचे बनाते-बनाते एक दिन थक कर रात को वही सो गई।)

विराज—रात तुम मुझे अन्दर कब लिवा लाए थे ?

नीलाम्बर—दो बजे थे। वे सांचे कैसे थे ?

बिराज—खिलौनो के।

नीलाम्बर—क्या रात मे जाग कर बनाती हो ?

बिराज—हाँ।

नीलाम्बर—कब से बना रही हो ये सब ?

बिराज—बहुत दिन हो गए।

नीलाम्बर—मुझे नहीं बताया। कितना पा जाती हो ?

विराज—आठ दस आने रोज।

नीलाम्बर—हूँ ! तो मैंने तुम्हे इस हालत तक पहुँचा दिया। विराज ? सुनो—सोचता हूँ कुछ दिनो के लिए तुम अपने मामा के घर चली जाओ। मैं एक बार कलकत्ता हो आता हूँ।

विराज—कलकत्ता जाकर क्या करोगे ?

नीलाम्बर—वहाँ कुछ धन्धा टटोलूँगा।

विराज—फिर कितने दिनों मे मुझे बुला लोगे ?

नीलाम्बर—छ महीने के अन्दर-अन्दर बुला लूँगा। मैंने आज तुम्हारे मामा के यहाँ से गाडी मँगा ली है। झटपट तैयार हो जाओ।

बिराज—मैं नही जाऊँगी। मेरी तबियत खराब है।

नीलाम्बर (विस्मय से)—तबियत खराब है !

विराज—हाँ, बहुत खराब है।

नीलाम्बर—अच्छा! तो आज गाडी लौटा देता हूँ। दो-चार दिन बाद आकर ले जाएगी।

विराज—मैं कहती हूँ रोज गाडी बुला कर तुम उसे क्यो तग करते हो। मैं मामा के यहाँ नही जाऊँगी। मेरे पास न गहने हैं, न कपडे हैं। दीन-दु.खी की तरह वहाँ जाना अच्छा नही लगता।

नीलाम्बर—आज गहने कपडो की बात करती हो। जब थे तब एक दिन भी उनकी ओर नही देखा। मैं तुम्हारे मन का छल खूब समझता हूँ। यहाँ सूख-सूख कर स्वय मरना चाहती हो साथ मे मुझे भी मारना चाहती हो। तुम्हारी मर्जी। मैं तो चला।

(नेपथ्य से खटखट की आवाज)

मोहिनी—जीजी।

विराज—कौन ? छोटी बहू।

मोहिनी—हाँ जीजी! अपराध क्षमा करना, मै आड मे खडी-खडी सब सुन रही थी। आज तुम से छोटे मुँह बडी बात कहने आई हूँ।

विराज—क्या बात है ?

मोहिनी—विपत्ति के दिनो मे छाती कडी करके चली जाओ जीजी और उन्हे भी जाने दो। कुछ दिनो मे भगवान कृपा करेंगे, दिन बदल जाएँगे। चुप क्यो हो दीदी ? क्या नही जा सकोगी ?

विराज—नही बहिन, नींद से उठकर उनका मुँह देखे बिना मै एक दिन भी नही रह सकूँगी। जो काम मैं कर नही सकती उसे करने को मत कहो।

मोहिनी—तुम्हे कुछ दिनो के लिए जाना ही पडेगा जीजी, नही तो बात विगड जाएगी।

विराज—समझ गई। तुम क्यो जिद् कर रही हो। जान पडता है सुन्दरी आई थी।

मोहिनी—हाँ! जीजी।

विराज—इसी से जाने को कहती हो ना ?

मोहिनी—हाँ, यही बात है।

विराज—क्या एक कुत्ते से डरकर घर छोडकर चली जाऊँ ? मुझे अपनी रक्षा करना स्वय आता है।

मोहिनी—कुत्ते के पागल होने पर उससे डरना ही पडता है जीजी! और फिर सोचो, इस बात से और भी कितना अनिष्ट हो सकता है।

विराज—तुम कुछ भी कहो, मैं इस तरह नहीं जाऊँगी।

(सहसा नीलाम्बर का प्रवेश)

नीलाम्बर—कहाँ नही जाओगी ? क्यो इतनी गरम हो रही हो ?

विराज—कुछ नही, तुम्हारे जानने की बात नही।

नीलाम्बर—अच्छा मत बताओ! मैं यहाँ जानने नही स्वय तुम्हे कुछ बताने आया था।

विराज—क्या बताने आए थे ?

नीलाम्बर—अपना जो नया जमींदार है ना उसके रगढंग देखती हो ?

विराज—देखती क्यों नहीं ?

नीलाम्बर—मुझे तो यह आदमी पागल मालूम होता है। नदी मे दो मछली लायक पानी नही है लेकिन यह दिन भर उसमे बन्सी डाले बैठा रहता है। ये क्या भले आदमियो के लक्षण हैं ? उसके सारे दिन यहाँ बैठने से तुम लोगो को बड़ी असुविधा होती होगी।

विराज—होती भी हो तो हम क्या कर सकते हैं ?

नीलाम्बर—क्यो नही कर सकते ? मैं कल ही कचहरी जाकर उससे कहूँगा कि ऐसा ही शौक है तो कही दूसरी जगह जाओ। यहाँ यह सब नही चलेगा।

विराज—नदी का घाट क्या हमारी सम्पत्ति है जो तुम उसे रोक दोगे। तुम्हें इस बारे मे कुछ कहने की आवश्यकता नही।

नीलाम्बर—ठीक है कि नदी हमारी नही, किन्तु उसे भले बुरे का विचार नही करना चाहिए ? नही सुनेगा तो उसे घाट पर उठाकर फैंक दूंगा।

विराज—तुम जमींदार से झगड़ा करने जाओगे ?

नीलाम्बर—क्यो नही जाऊँगा ? मन चाहा अत्याचार करता रहेगा—हम सहते रहेंगे ? यह नही होगा।

विराज—जरा ठण्डे दिमाग से सोचो ! जिसके घर मे दो वक्त खाने का ठिकाना नहीं उसे जमींदार से लड़ना क्या शोभा देगा।

नीलाम्बर—तू क्या मुझे कुत्ता-बिल्ली समझती है ? जब देखो खाने का ताना दिया करती है। किस दिन तुझे खाने को नही मिला ?

विराज—चिल्लाओ मत। मुझ मे अब यह सब सहन करने की शक्ति नहीं है। किस तरह और कहाँ से खाना मिल रहा है यह मै जानती हूँ या मेरे अन्तर्यामी जानते हैं। तुम यदि इस बारे मे कहोगे तो मैं विष पीकर मर जाऊँगी।

(रुदन)

(एक दिन सुबह दरवाजे पर मोहिनी की आवाज सुनाई दी)

मोहिनी—जीजी, अभी कोई सोकर नही उठा। चलो ना, नदी में एक डुबकी लगावें।

विराज—देवरजी से पूछ लिया है ?

मोहिनी—उन्होंने तो जमींदार का घाट बनने के बाद नदी पर जाना ही बन्द कर दिया है। पर जीजी, देखो ना—दशहरे के दिन नदी में नहाना ही चाहिए। चलो जल्दी तैयार हो।

विराज—अच्छी बात है चलो।

मोहिनी—जीजी, वह देखो घाट पर पेड़ के पास कौन खड़ा है ?

विराज—हाँ, मैंने भी उसे देख लिया है। वह जमींदार का लड़का राजेन्द्र है। आश्चर्य है ! इतने तड़के यह यहाँ क्यो आया ?

अब यहाँ खड़ी न रहो छोटी बहू, चली जाओ। मैं अभी इसकी अक्कल ठिकाने करती हूँ (राजेन्द्र से)।

आप भले घर के दिखाई पड़ते हैं किन्तु आपके रंगढंग क्या हैं? आप कितने नीच हैं इसे इस घाट की एक-एक ईंट जानती है और मैं भी जानती हूँ। मालूम होता है आपकी माँ बहिन नही है। बहुत दिन पहले मैंने अपनी दासी द्वारा आपको यहाँ आने से मना करा दिया था किन्तु आपने नहीं सुना। आप मेरे स्वामी को नही जानते। यदि जानते तो यहाँ आने का साहस नही करते। फिर कभी यहाँ आने की चेष्टा नही करिएगा। नही तो परिणाम अच्छा नही होगा। चलो छोटी बहू, घर चलें। देर हो रही है।

(घर के अन्दर जाते ही पीताम्बर का प्रवेश)

पीताम्बर (मोहिनी से)—कहाँ गई थी?

मोहिनी—नदी पर नहाने।

पीताम्बर—तुझ से मना किया था ना, फिर क्यों गई थी?

(पिटाई) (रुदन)

नीलाम्बर (चिल्लाकर)—पीताम्बर, शर्म नही आती बहू पर हाथ उठाते तुझे। जाओ बेटी, तुम अन्दर जाओ। किसी बात से मत डरो। चलो पीताम्बर जब तक मैं इस घर मे हूँ तब तक यह सब नही होगा। यदि तूने बहू पर हाथ उठाया तो मैं तेरा हाथ तोड़ दूँगा।

पीताम्बर (नीलाम्बर से)—घर पर चल कर मारने आ गए, पर कारण जानते हो?

नीलाम्बर—जानना भी नही चाहता।

पीताम्बर—वह क्यो चाहोगे? देखता हूँ मुझे घर छोड़ कर जाना पड़ेगा।

नीलाम्बर—घर छोड़ कर किसे जाना पड़ेगा यह मैं जानता हूँ। किन्तु जब तक यह नहीं होता तब तक तुझे सन्तोष करके ही रहना पड़ेगा।

पीताम्बर—मेरे ऊपर शासन करने से पहले अपने घर पर शासन करो तो ज्यादा अच्छा होगा।

नीलाम्बर—क्या मतलब?

पीताम्बर—मतलब जानना चाहते हो? वह नदी पार वाला घाट किसका है जानते हो? जब से वह बना है मैंने छोटी बहू को वहाँ जाने से मना कर दिया है। आज वह भाभी के साथ वहाँ नहाने गई थी। क्या मालूम इस तरह रोज वहाँ जाती हो?

नीलाम्बर—बस इसीलिए तूने हाथ उठाया?

पीताम्बर-पहले बात तो पूरी सुन लो। वह जमीदार का लड़का है ना राजेन्द्र, उसकी चारो तरफ बदनामी है। आज भाभी उसी के साथ आधे घण्टे तक गप्प लड़ाती रही। भला किसलिए?

नीलाम्बर—कौन गप्प लड़ा रही थी? बिराज बहू?

पीताम्बर—हाँ वही।

नीलाम्बर—तूने खुद देखा है ?

पीताम्बर—मैं जानता था तुम मेरी बात का विश्वास नही करोगे भैय्या, किन्तु मेरा न्याय भगवान करेंगे।

नीलाम्बर—भगवान का नाम लेने की क्या जरूरत है। जो कुछ कहना है वह कह।

पीताम्बर—मैं बिना आँखो देखे कोई बात नही कहता। ऐसी मेरी आदत नही है। मैं फिर कहता हूँ भैय्या, यदि घर का शासन नही कर सको तो बिना बात दूसरो को मारने धमकाने मत आया करो।

नीलाम्बर—तू क्या कह रहा है पीताम्बर ? क्या विराज वहू आधे घण्टे तक गप्प मारती रही ? तूने अपनी आँखो से देखा है ?

पीताम्बर—हाँ हाँ, अपनी आँखो से देखा है। शायद आधे घण्टे से ज्यादा ही होगा।

नीलाम्बर—यदि तेरी बात ठीक भी है तो यह तूने कैसे जाना कि बात करना जरूरी नही था ?

पीताम्बर—यह मैं नहीं जानता। इसकी खोज खबर तुम करो।

नीलाम्बर—पीताम्बर, तू जानता है। किन्तु छोटा भाई है इसलिए श्राप नही दूंगा। जा—मैंने तुझे माफ कर दिया है किन्तु आज तूने अपने से बडों के लिए जो बात कही है उसके लिए भगवान तुझे कभी माफ नही करेंगे।

× × ×

(दो दिन बीतने के बाद डरी सहमी विराज पति से पूछती है)

विराज—तुम इतने दिनो से मुझ से बोलते क्यो नही ?

नीलाम्बर—हूँ ! तुम मुझ से दूर भागती फिरती हो। बातें किससे करूँ।

विराज—क्या एक बार मुझे पुकार कर नही बुला सकते थे ?

नीलाम्बर—जो आदमी भागता फिरे उसे पुकारने से पाप होता है !

विराज—पाप ! मालूम होता है कि तुमने देवरजी की बात पर विश्वास कर लिया।

नीलाम्बर—सत्य बात पर विश्वास नही करें ?

विराज—यह सत्य नही है, भयकर झूँठ है। तुमने कैसे विश्वास कर लिया ?

नीलाम्बर—तुमने नदी तट पर बात नही की थी ?

विराज—हाँ, की थी।

नीलाम्बर—हूं—बस, मैंने इसी पर विश्वास किया है।

विराज—जानते हो मैंने उससे क्या कहा था ?

नीलाम्बर—जानता हूँ। तुमने उसे आने से मना कर दिया है।

विराज—यह तुम से किसने कहा ?

नीलाम्बर—किसी ने नही । लेकिन मैं यह जानता हूँ कि किसी अपरिचित से जब बात की है तो जरूर किसी बडे दुःख के पडने पर ही की होगी । इसके सिवाय और हो ही क्या सकता है । किन्तु विराज, यह तुमने अच्छा नही किया । मुझ से कहती । मै उसकी अक्कल ठिकाने कर देता । मैं उसके रग ढग बहुत दिनो से जानता हूँ पर तुम्हारे डर से कुछ नही बोला । आज घाट पर दिन भर मैंने उसकी प्रतीक्षा की पर वह मिला ही नहीं । मिल जाता तो मै उसे मजा चखाता ।

विराज—फिर मैं तुम से कहती हूँ कि तुम इस बारे मे कुछ मत कहना ।

नीलाम्बर—क्यो नही कहूँ ? आखिर मैं तुम्हारा पति हूँ । आखिर मेरा कर्त्तव्य है ।

विराज—पहले पति के और कर्त्तव्य तो पूरे करो, फिर यह कर्त्तव्य पूरा करना ।

नीलाम्बर (चिल्ला कर)—विराज !

(अपने निकम्मेपन के अहसास से नीलाम्बर मन ही मन सतप्त हो उठा और दम्पत्ति के बीच सन्धि का सूत्र छिन्न-भिन्न हो गया)

(अकेले में दो पहर को छोटी बहू का प्रवेश)

मोहिनी—दीदी, तुम यह क्या पागलपन करबैठी हो । इस प्रकार आँसू क्यो बहा रही हो ?

विराज—छोटी-बहू, मेरी जैसी हालत मे क्या तुम पागल नही होती ?

मोहिनी—मुझे अपने बराबर समझती हो दीदी । मैं तुम्हारे पाँवो की धूल बनने लायक भी नही हूँ । आज तुमने जेठजी को भूखे ही उठा दिया, इसका मुझे बडा दुख है । ऐसा क्यो किया तुमने ?

विराज—मैंने भूखा उठा दिया ? मैंने उन्हे खाने से कब रोका ?

मोहिनी—रोका नही, किन्तु थाली पर बैठ कर उन्होने कितनी ही बार पुकारा और तुमने एक बार भी जवाब नही दिया ।

विराज—कुछ काम कर रही होगी ।

मोहिनी—मुझ को धोखा मत दो दीदी । मैं अच्छी तरह जानती हूँ तुमने हमेशा सब काम छोड कर, जेठजी को सामने बिठाकर भोजन कराया है । ससार मे इससे बडा काम कभी नही रहा । किन्तु आज' '"

विराज—बात मत छेडो छोटी बहू । अब और न कहो । आज अगर तुम उनकी थाली का खाना देखती तो मुझे दोषी न बताती । तुम भी औरत हो । अपने स्वामी को भोजन परोसती हो । तुम्ही बताओ, क्या दुनिया में कोई ऐसी औरत है जो पति को ऐसा खराब भोजन करते आँखो से देख सके । पर छोटी बहू ! मुझे ऐसा दिखाई दे रहा है कि ऐसा भोजन भी अब ज्यादा दिन नहीं जुटा पाऊँगी । अब मेरे यहाँ से गए बिना उनका सकट दूर नही होगा । मैं जाऊँगी । मै चली जाऊँगी छोटी-बहू ! बताओ, मेरे जाने के बाद उनकी देखभाल कर सकोगी ?

मोहिनी—कहाँ जाओगी दीदी ?

बिराज—कहाँ जाऊँगी ? क्या बताऊँ। सुनती हूँ इससे बढ़कर कोई पाप नही है।

मोहिनी (आश्चर्य से)—आत्म हत्या ! छी छी ! ऐसी बात होठों पर भी नही लाना दीदी। यह तुम्हें क्या हो गया है ?

बिराज—यह मैं नहीं जानती। केवल यह जानती हू कि अब मैं उन्हें खाना नही दे सकती। तुम मुझे वचन दो कि मेरे पीछे दोनो भाइयो को मिला दोगी।

मोहिनी—वचन देती हू, किन्तु तुम्हें भी एक भीख देनी होगी।

बिराज—वह क्या ?

मोहिनी—यह मोहर.....

बिराज—नही नही, यह सब नही हो सकता। मैं किसी का कुछ नही लूंगी।

(बीमारी से जर्जर होने पर भी बिराज अपने पति के लिए चावल मांगने चाण्डाल के घर गयी थी। पीछे उसके पति लौट आए और उससे पूछने लगे।)

नीलाम्बर—इस अंधेरी रात मे तुम अकेली कहाँ गयी थी ?

बिराज—घाट !

नीलाम्बर—घाट ! नही, घाट तुम नही जाती।

बिराज—तब मौत के घर गयी थी।

नीलाम्बर—सच बताओ, कहाँ गई थी ?

बिराज—अगर न बताऊँ तो ?

नीलाम्बर—बताना ही होगा।

बिराज—मैं किसी तरह नही बताऊँगी। तुम खा चुकोगे तब बताऊँगी।

नीलाम्बर—नही, हर्गिज नही, बगैर सुने मैं तुम्हारे हाथ का छुआ...

बिराज (बीच मे ही चौंक कर)—क्या कहा ? तुम मेरा छुआ जल तक नही पीओगे।

नीलाम्बर—नही, किसी तरह भी नहीं।

बिराज—समझ गई। अब नही पूछूंगी और मैं भी किसी तरह नहीं बताऊँगी। कल जब तुम होश मे आओगे तब सब कुछ समझ जाओगे। इस समय तुम अपने आपे मे नही हो।

नीलाम्बर—तेरा मतलब है मैंने गांजा पिया है। नहीं मैंने गांजा वांजा कुछ नही पिया। मुझे सब बातो का ज्ञान है। ज्ञान तो तूने खो दिया है। अब तू वह बिराज नही। झूँठी बात कह कर मेरी आंखो मे धूल झोंकना चाहती है। मैं मूर्ख था। उस दिन पीताम्बर की बात पर विश्वास नहीं किया मैंने।

बिराज—झूँठ बात इसलिए कही है कि सच्ची बात सुन कर तुम्हें शर्म आएगी, दुख होगा। तुम्हारा खाना पीना रुक जाएगा। किन्तु मेरा ध्येय ही मुझे मिथ्या लग रहा है। तुम अब मनुष्य नही रह गए हो। तुम्हें लज्जा शर्म नही। रोगी स्त्री को घर मे अकेली छोड़ कर तीन दिन से दूसरे घरो पर गांजे की दम लगा रहे थे। (मारपीट-रुदन) तुमने मुझे मारा ! तुमने मुझे मारा !!)

नीलाम्बर—दूर हो जा मेरे सामने से। अब मुझे अपना मुँह मत दिखाना। अलक्ष्मी, पापिन, जा यहाँ से।

विराज—जाती हूँ! जाती हूँ!! किन्तु यह तुम कह रहे हो?

नीलाम्बर—हाँ।

विराज—किन्तु कल जब तुम्हे मालूम होगा कि गुस्से मे तुमने मुझे मारा, घर से निकाल दिया तो बर्दाश्त कर सकोगे? जब तुम्हे यह मालूम होगा कि तीन दिन से ये रोटियाँ मैं तुम्हारे लिए भीख माँग कर लाई तब सह सकोगे? इस कुलक्षणी को छोड कर रह सकोगे? साल भर से जाने की सोच रही थी किन्तु तुम्हे छोड कर नही जा सकी। इधर देखो। आँख उठाकर देखो, अब मेरे शरीर मे कुछ नहीं रहा। आँख से ठीक दिखाई नही देता। एक पल नही चला जाता। फिर भी मै सहती रही। किन्तु मेरे स्वामी होकर तुमने जो कलक मुझ पर लगाया है उसके कारण मै अपना मुँह नही दिखाऊँगी। तुम्हारे चरणो मे मरने की सबसे बडी आकांक्षा थी किन्तु, अब मै जा रही हूँ! मै जा रही हूँ?

कहा था अब मेरे हाथ का जल ग्रहण नही करेंगे ...... जा रही हूँ .. क्योकि वह पाप ही तो पीएँगे।

× × ×

(विराज सुन्दरी के पास जाती है)

विराज—सुन्दरी! ओ सुन्दरी।

सुन्दरी—अरे बहू, इस कुवेला मे तू। रास्ता कैसे मिला?

विराज—रास्ता? रास्ता पूछती हो? बचपन से ही इस गाँव की बहू होने के नाते यहाँ का चप्पा-चप्पा पहचानती हूँ।

सुन्दरी—पर बहू, तुम्हारा यह क्या हाल हो रहा है। सारा माथा खून से लाल हो रहा है। किसने मारा है?

विराज—उनके अलावा कौन मुझ पर हाथ उठा सकता है। सुन्दरी—यह तू क्यो बार बार पूछ रही है? उन्होने मुझ को बेकसूर मारा है। मेरे सिर पर पायदान उठा कर दे मारा और '...और वह साधक पुरुष कहते है अब वे मेरे हाथ का पानी भी नही पीएँगे।' ... अच्छी बात है। वह नही पीएँगे! नही पीएँगे!! आज तू मुझे वही ले चल। वही ले चल सुन्दरी।

सुन्दरी—तुम यह क्या कह रही हो?

विराज—ठीक कह रही हूँ। आओ चले।' .... वह उधर घाट पर खडा है। मैने उसे अभी देखा है।

सुन्दरी—अच्छा आओ, चलो।'... ' नाव पर बैठ कर चलते है।

(नाव चलने की ध्वनि)

सुन्दरी—आ गए। चल बहू, जरा सम्भाल कर।

विराज—तुम बजरे पर चढो।

सुन्दरी—नहीं बहू, मैं नही जाऊँगी । मेरे चले जाने पर लोग तरह तरह के शक करेंगे। डर मत बहू, वह बहुत अच्छे आदमी हैं। ईश्वर ने चाहा तो फिर मिलेंगे बहू ।

जमींदार का लड़का राजेन्द्र—सुनिए।

तुम""" आप बजरे के अन्दर चल कर बैठें। यहाँ पेड़ो की डालिया वगैरा लगेगी । रात अँधेरी है।

नाविक, जरा होशियारी से चलाओ, धार तेज है ।

आप अन्दर आ जाइए ! अन्दर आ जाइए !!

यहाँ, सुनिए ।

विराज (चौंककर)—अरे, तुम ! मैं यहाँ । अरे' ..

(नदी मे कूदने की आवाज)

मल्लाह—अरे बाबूजी । यह तो डूब गई । अब क्या होगा ।

राजेन्द्र—गदायी, नाव जल्दी चलाओ ।

× × ×

नीलाम्बर—पीताम्बर की भाँति विराज को भी भगवान् ने उठा लिया होता तो आज यह कलक नहीं भुगतना पडता। पूटी आ रही है। वह सुनेगी तो उसके दिल पर क्या बीतेगी। वह तो सिर उठा कर देख भी नहीं सकेगी।

मोहिनी—पूटी को यह बताने की जरूरत नही है।

नीलाम्बर—कैसे छुपाऊँगा बेटी । वह पूछेगी तो क्या जवाब दूँगा ?

मोहिनी—यही कि नदी मे डूब कर मर गई।

नीलाम्बर—नही, यह नही हो सकता । छिपाने से पाप और बढता है। हम उनके अपने हैं। अब उसके पाप का बोझ और नहीं बढाएँगे।

मोहिनी—किन्तु बापू यह बातें सच नही हैं।

नीलाम्बर—सच कैसे नही है। सब सच है। जानती हो गुस्सा होने पर उस पगली को ज्ञान नहीं रहता था और मैंने जो उसका अपमान किया है उसे स्वय भगवान भी नही सह सकते, वह तो मनुष्य थी। मुझे यह बात मालूम नहीं है कि वह सुन्दरी के साथ राजेन्द्र बाबू की नाव पर ·

मोहिनी—यह सत्य नही है जेठजी । हर्गिज सत्य नही है। दीदी का शरीर और प्राण रहते कोई इस तरह का काम उनसे नही करा सकता । वह तो सुन्दरी का मुँह तक नही देखती थी ।

नीलाम्बर—शायद तुम्हारी बात सच हो बेटी। उनके शरीर मे प्राण नहीं थे । होश सम्भालते ही उसने अपने प्राण मुझे अर्पण कर दिए थे और वह आज भी मेरे पास है।

नीलाम्बर—पूटी आ गई, सारी बात सुन कर उसे बड़ा धक्का लगा है। वह हवा बदलने के लिए मुझे पश्चिम ले जाना चाहती है। क्या तुम हमारे साथ नही चलोगी बेटी ?

मोहिनी—जी नही । यह नही हो सकता ।

नीलाम्बर—यहाँ तुम अकेले कैसे रहोगी और यहाँ रह कर होगा भी क्या ? चलो ।

मोहिनी—नही नही लालाजी । मैं वहाँ नही जा सकूँगी ।

नीलाम्बर—तू क्यो नही जा सकती, यह नही बताएगी तो मैं भी नही जाऊँगा ।

मोहिनी—नही, आप जाइए, मैं यही रहूँगी ।

नीलाम्बर—लेकिन क्यो ?

मोहिनी (सकोचपूर्वक धीरे से)—क्योंकि शायद दीदी कभी आ जाएँ इसीसे नही जाऊँगी ! मैं नही जाऊँगी !!

नीलाम्बर—छी—बेटी, अगर तुम भी पागल की तरह बात करोगी तो मेरा क्या हाल होगा ?

मोहिनी— मैं पागल नही हूँ । जब तक चाँद सूरज को निकलते देखती हूँ तब तक इस बारे मे किसी बात पर विश्वास नही कर सकती । स्वामी के चरणो मे सिर रख कर मरने का जो वरदान दीदी ने आपसे प्राप्त किया है वह किसी तरह निष्फल नही हो सकता । मेरी सती जीजी निश्चय ही लौटेंगी । जब तक जीती रहूँगी उनका रास्ता देखती रहूँगी । लालाजी, आप मुझे कही जाने के लिए मत कहिए ! मत कहिए !!

× × ×

(नीलाम्बर पूटी के साथ बराबर एक तीर्थ से दूसरे तीर्थ घूमता रहा । पूटी उसे विश्राम नहीं लेने देती थी सहसा एक दिन पूटी ने लौटने के लिए कहा) ।

पूटी—दादा, चलो घर चले ।

नीलाम्बर (चौंक कर विस्मय से)—तुम तो माघ का महीना प्रयाग मे ही बिताने को कह रही थी ।

पूटी—अब एक दिन भी रहना नही चाहती । कल ही जाऊँगी ।

नीलाम्बर (विषादपूर्ण हँसी हंस कर)—क्या बात है पूटी । क्यो जाना चाहती हो ?

पूटी—रह कर क्या होगा ? तुम्हे अच्छा लगा नही । जाऊँ जाऊँ करके रोज सूखते जा रहे हो। अब यहाँ मैं एक दिन भी नही रहूँगी ।

नीलाम्बर (स्नेहपूर्वक)—अरे लौट जाने से ही क्या अच्छा हो जाऊँगा । इस देह का अब विश्वास नही है । इससे अच्छा है जो होना हो वह घर जाकर ही हो ।

पूटी—दादा, तुम क्यो उसे सदा इस तरह याद किया करते हो ? चिन्ता करके ऐसे हुए जा रहे हो ।

नीलाम्बर—किसने कहा मै उसे याद करता हूँ ।

पूटी—कौन कहता ? मैं क्या नही जानती ?

नीलाम्बर—तू उसे याद नहीं करती ?

पूटी—(उद्धत भाव से) नहीं याद करती। उसकी याद करने से पाप होता है।

नीलाम्बर—(चौंक कर) क्या होता है ?

पूटी—पाप होता है। उसका नाम मुँह पर लाने से ही वह अपवित्र होता है। मन में लाने से स्नान करना पड़ता है।

नीलाम्बर (कड़े स्वर में)—पूटी, वह तुम से बड़ी है। माँ की भाँति तेरा पालन पोषण किया है। तेरी माँ के बराबर है। दूसरे चाहे जो कुछ भी कहें तेरे मुँह में ऐसी बात निकलना घोर अपराध है।

पूटी (झिझकते हुए)—तो क्यों वह हम लोगों को इस तरह छोड़ कर चली गई ?

नीलाम्बर—क्यों चली गई ? इसे मैं जानता हूँ या अन्तर्यामी जानता है।

पूटी (रुन्धी आवाज में)—तो लौट क्यों नहीं आती, दादा ?

नीलाम्बर—आने का उपाय नहीं है। जिस अवस्था में छोड़ कर गई है उसमें लौटने का कोई रास्ता होता तो वह जरूर लौट आती। वह आना चाहती है। आ नहीं पाती है। यह कैसा दण्ड है। वह कभी कभी अपने मन की साध, दूर की इच्छाएँ मुझ से कहा करती थी। एक तो अन्त समय मेरी गोद में अपना सिर रख सके और दूसरे, सती सावित्री के समान मृत्यु के पश्चात् उन्हीं को पा जाए। अभागिन की सारी साधें मिट गईं। तुम सब उसे दोषी बताते हो, मैं मना नहीं कर पाता इसलिए चुप रहता हूँ। किन्तु भगवान् को धोखा कैसे दूँ। वह तो जानता है कि वह किन के दुःख और अपराध का भार लेकर डूब गई। मैं उसे किस मुँह से दोष दूँ। संसार की आँखों में कितनी ही कलंकिनी हो पर मुझे उसके विरुद्ध कोई शिकायत नहीं है। अपने ही दोष से मैं उसे खो बैठा। भगवान् करे अगले जन्म में फिर उसे पाऊँ।

[illegible]

पूटी—क्यो जी, तुम्हारा घर कहाँ है ?

विराज—सप्त ग्राम मे (कहकर हँस पडती है।)

पूटी (चौंक कर)—अरे यह हँसी ? यह तो भाभी है। भाभी····

नीलाम्बर (घबराकर)—नही नही। यहाँ मत रो! चल चल ले इसे ले चल। घर चलने से ठीक हो जाएगी। घबरा मत! घबरा मत!!

विराज—हाँ····हाँ····मुझे घर ले चलो और मेरी चारपायी पर सुला दो। मेरा इलाज कराने से कुछ लाभ नही होगा। ग्रा····हा, अब भगवान् का बुलावा आ गया है।

नीलाम्बर—तुम्हे घर ही ले चलता हूँ। छोटी बहू तुम्हारा कब से इन्तजार कर रही है ?

(घर पहुँचने के बाद)

विराज—आह····आह ··मैं मेरे घर आ गई। जिसकी बडी साध थी वह अब पूरी हो गई। छोटी बहू···छोटी बहू··· तुम कहाँ हो ?

मोहिनी—दीदी, मैं तुम्हारे पास हूँ।

विराज—पूटी कहाँ है ······ वो कहाँ हैं।

मोहिनी—पूटी तुम्हारे पलग के पास सो रही है दीदी।

विराज—और वो ?

मोहिनी—वे सध्या पूजा कर रहे हैं।

विराज—मालूम होता है मुझे आज ही जाना है। भगवान् की बडी दया है जो उन्होने मुझे क्षमा कर मेरे पति के पास लौटा दिया है। अब अधिक जिन्दा रहने से क्या लाभ है। · · यह कौन रो रहा है ? ······· पूटी तुम रोओ मत। रोओ मत। यहाँ आओ।

पूटी—तुम मरो मत भाभी। हम अधिक नही सह सकेंगे। तुम दवा खाओ अरे कहाँ चली ? मैं तुम्हारे पैरो पडती हूँ, तुम और कुछ दिन जीती रहो भाभी।

विराज (उखडे गले से)—पूटी, सुन भगवान् ने मुझ पर कितनी दया की है यह मैं ही जानती हूँ, वरना यह कोई जीना है ? बहुत जीने के बाद समझेगी।···· मेरी अच्छी बेटी' अब मत रो। जा अपने दादा को बुला ला। उन्हे बहुत देर से नही देखा।

नीलाम्बर—विराज। मै यही हूँ। अपना हाथ दिखाओ। देखूँ कितना बुखार है।

खूब हाथ देखो।·· नही नही, मैं भूल गई। हाथ देख कर क्या करोगे। यह बताओ कि अब कितनी देर है। कितनी देर है। सब के सामने कहो एक बार कि मुझे क्षमा कर दिया। आह ···।

नीलाम्बर (भर्राई आवाज मे)—कर दिया।

विराज—ओ''' हो, जाने मे या अनजाने मे, कुछ दिन तुम्हारी गृहस्थी मे रह कर मैंने कितनी ही गल्तियाँ की हैं ।''''छोटी बहू '''पूटी तुम सब मेरी बातो को क्षमा करना और आज मुझे विदा करो। आइ मैं चली। पूटी अपने दादा के पाँव तो ऊपर उठा। ऐसे चरणो की धूल माथे पर लगाऊँगी। आ' 'ह, मेरा सब दुख इतने दिनो बाद सार्थक हो गया। और सब कुछ नही चाहिए। मेरा स्नेय निष्पाप है।' ' जाती हूँ '' ' जाती हूँ ' तुम इस तरह मुझे लिए रहो ' ' कही जाना नही।

नीलाम्बर (चीखकर)—विराज।

विराज—धीरे से कही जाना नहीं ''

नीलाम्बर—विराज!

13

'चरित्रहीन'

नाट्य रूपान्तर

पात्र—(1) उपेन्द्र (2) सतीश (3) दिवाकर (4) जमुना (5) किरणमयी

जमुना—बहूजी। आज खाना फिर उठाकर रख दूँ ?

किरण—नहीं। तुम खालो, उठाकर रखके क्या होगा ?

जमुना—तो तुम आज भी नही खाओगी ? बताओ ऐसे के दिन शरीर चलेगा ?

किरण—शरीर चलाकर अब क्या होगा जमुना ? तू जा। आज जी बडा अनमना हो रहा है।

जमुना—नहीं बहूजी ! आज ऐसे नही छोडने की। मैंने भी आज कसम उठाई है, आप नही खाएँगी तो मैं भी नही खाऊँगी।

किरण—ऐसी जिद न करो। जाओ खाकर सो रहो।

जमुना—बहूजी······ ?

किरण—जा जमुना, मैं बहुत थक गई हूँ।

जमुना—अच्छा—बहूजी, मानोगी नही। पता नही इतनी कठिन तपस्या क्या पाने के लिए कर रही हो ?

किरण (हँसकर)—तपस्या ? अब कुछ पाना शेष नही रहा। अच्छा जमुना ! नही नही रहने दो।

जमुना—क्या बहूजी ? बात अधूरी क्यो छोड दी, कहती क्यो नही ?

किरण—क्या तू भगवान् का ध्यान करती है ?

जमुना—हाँ बहूजी, मन्दिर में भगवान् के दर्शन करने जाती हूँ।

किरण—क्या सचमुच भगवान् है ? तू उनकी भक्ति कर सकती है ? मैं नही कर सकती। मैंने उन्हे कितना पुकारा। किसी ने कोई पूजा पाठ नही बताया जिसमे वे अच्छे हो जाते। सच ? जमुना ! उनकी बीमारी ने पति से भी ज्यादा मेरी सुधबुध छीन ली। मैं पागल हो गई जमुना।

जमुना—कौन बीमार थे बहूजी ? तुम तो कहती थी दुनिया में मेरा कोई नहीं है।

किरण—कहती तो यही थी जमुना, पर आज मुझे कुछ बीती बातें याद आ रही हैं।

जमुना—कौन सी बातें ?

किरण—तू सुनेगी ?

जमुना—तुम कहोगी तो क्यों नहीं सुनूंगी। आखिर कोई तो बात ऐसी जरूर होगी जिसके दुख में तुमने अपना तन, मन गला डाला है। कहो बहूजी।

किरण—जमुना, मैं बड़ी अभागिन हूं। जिन्दगी में दुःख के सिवाय एक पल के लिए भी मैंने सुख नहीं देखा। मैं दस वर्ष की थी जब कलकत्ते की एक अँधेरी गली में वधू बनकर आई। माँ-बाप थे नहीं, मामा ने बला समझकर मुझसे पीछा छुड़ाया। ससुराल में सास और पति दो ही थे और दोनों इतने रूखे, इतने कठोर कि मारने ताड़ने के सिवा एक दिन भी उन्होंने मुझे प्यार नहीं दिया। बचपन रो रोकर बीता। जब जवानी में पैर रखा तो पति और सास ने बीमारी में खाट पकड़ली। घर पर मृत्यु की छाया मँडराने लगी, तभी एक दिन उपेन्द्र अपने मित्र सतीश के साथ उन्हें देखने आ गए। उनसे बातचीत की और जाने लगे।

(फ्लेश बैक)

किरण—आप जा रहे हैं ?

उपेन्द्र—जी ! क्या आपको कुछ काम है ?

किरण—मैं पूछना चाहती हूं कि आप मेरे पति के कौन हैं ? पहले तो आपको कभी नहीं देखा ?

उपेन्द्र—आपके पति और मैं साथ पढ़े हैं। हारान दादा मेरे मित्र और बड़े भाई के बराबर हैं।

किरण (क्रोध से)—तो आप इसी रिश्ते से यह लिखा पढ़ी करने आए हैं कि भाई की मृत्यु के बाद उनकी पत्नी को मुट्ठी भर अन्न न मिले, वह दर-दर की भिखारिन बन जाए और आप लोग हिस्सा बाँट लें ?

सतीश (व्यग्य से)—जिसकी चीज है वह खुद ही दे जाए तो किसी को कुछ कहने की गुंजाइश ही नहीं रहती। क्यों उपेन भैया ?

किरण—मरने के समय मनुष्य की बुद्धि मारी जाती है। मेरे पति की भी वही दशा है।

सतीश—पर मुझे तो आपके पति बड़े बुद्धिमान दिखाई देते हैं। यदि वे आपको सम्पत्ति का अधिकारी मानते तो इतनी सावधानी की जरूरत ही क्या थी। आप स्वयं ही अपने अधिकार खो बैठी हैं ?

किरण (क्रोध से)—मैं क्या अपना अधिकार खो बैठी हूं ? उन्होंने मेरे बारे में कैसी बातें कही हैं ? जरा मैं भी सुनूं।

सतीश (व्यंग्य से)—उनको कहने की क्या जरूरत है। जिसका पति मौत की घड़ियाँ गिन रहा हो, वह क्या आपकी तरह शृंगार करेगी ? माँग भरेगी ? टीकी लगाएगी ?

उपेन्द्र—चुप रहो सतीश ! अनजाने इस तरह की बाते तुम्हे शोभा नही देती। (किरण से) आप नाराज न हो, आपको स्वामी की सम्पत्ति से वंचित करने का अधिकार किसी को नही है। रात बहुत हो गई, हम जाते हैं। कल आएँगे।

(फ्लैश बैक-समाप्त)

जमुना—बहूजी, उपेन्द्र बाबू तो बड़े भले आदमी मालूम होते है। दूसरे दिन वे आए कि नही।

किरण—जमुना बीमारी मे उपेन्द्र भैया ने मेरे पति की बड़ी सेवा की। उनकी सेवा देखकर मेरा सारा क्रोध उनके चरणो मे बह गया। उनकी देखा-देखी मेरे मन में भी स्वामी के लिए प्यार उमड़ने लगा। मैं दिन-रात उनकी सेवा मे जुट गई।

जमुना—तुम तो ऐसे कह रही हो बहूजी, जैसे पहले पति को प्यार ही न [illegible]ती हो।

किरण—हाँ, जमुना ! मैं सच कह रही हूँ। जिन्दगी मे कभी प्यार देखती तो जानती कि प्यार क्या होता है ? पति का प्यार मैंने जाना तक नही। मैं इन्ही लोगो की तरह कठोर बनकर नारी धर्म को भूल गई थी। मेरी सास इस [illegible]न को जानती थी कि उनकी बहू सती धर्म का पालन नही करती।

जमुना (आश्चर्य से)—क्या कह रही हो ? मैं तुम्हारी बात नही समझी, [illegible]हूजी।

किरण—सती धर्म जानती है न ?

जमुना—क्यो नही जानती। अपने पति की सेवा करना ही तो सती धर्म है।

किरण—हाँ तो मैं वही बता रही हूँ। हमारे यहाँ एक डाक्टर आता था। वह बिना दाम लिए माँ-बेटो का इलाज करता था, गृहस्थी का आधा खर्चा भी वही ....

जमुना—तो उन्ही की वजह से तुम्हारी सास तुम्हे खरी-खोटी सुनाती [illegible]गी। पराए आदमी से बात करने पर नाराज होती होगी ?

किरण (श्वास लेकर)—यही तो आश्चर्य है जमुना। वे नाराज नही होती थी। [illegible] सती धर्म की अपेक्षा उन्हे बेटे के इलाज की ज्यादा चिन्ता थी। मृत्यु के [illegible] मे आई हुई सन्तान के इलाज के सामने किसी भी अपराध को बड़ा मानने का [illegible] उनमे [illegible] था। और फिर पुत्र-वधू से उन्हे प्यार भी कब था ? सब कुछ [illegible] भी वे [illegible] बनी रही। ओह ! कैसी स्वार्थी दुनिया है ?

जमुना [illegible]। उपेन्द्र बाबू ने उस डाक्टर को देखा था ? क्या वह उनके [illegible] [illegible] [illegible] था ?

किरण—नही । उपेन्द्र बाबू के व्यक्तित्व ने मुझे इतना प्रभावित किया कि उस डाक्टर की छाया से मुझे नफरत हो गई । मैंने उसका अपमान किया और एक दिन अपने सारे गहने देकर उसे हमेशा के लिए विदा कर दिया । उस दिन मैंने कितनी शान्ति पाई, तुझे क्या बताऊँ ?

जमुना—यह तुमने बड़ा अच्छा किया । पर डाक्टर की जरूरत तो तब भी होगी, बाबूजी के इलाज के लिए ।

किरण—अन्त समय में कौनसी दवा काम आती है जमुना ! उन्हें दवा की जरूरत नही थी । अब तो उनकी सेवा ही बाकी थी । वह मैं और उपेन्द्र के मित्र सतीश करते थे ।

(फ्लैश बैक)

सतीश— भाभी ! मैं आपकी पति सेवा देखकर चकित हूँ, सारी रात आप पलग के पास बैठकर जगती हैं । सारे दिन मेहनत करती हैं । पर मुँह पर कभी थकावट या दुख का नाम भी नहीं दिखाई देता ।

किरण—मेरा तो कर्त्तव्य है भैया । पर आप जिस लगन से इनकी सेवा कर रहे हैं वह तो और भी आश्चर्य की बात है ।

सतीश (आश्चर्य से)—मैंने आपको उस दिन बड़ा गलत समझा था । आज आपका प्रेम और पति-सेवा देखकर मेरा मन पश्चाताप से जल रहा है ।

किरण—इसका विचार न करो सतीश भैया । तुम शीघ्र अपने भैया को तार दे दो ।

सतीश—क्यो, क्या बात है ?

किरण—इस बार तुम्हारे भैया की वेदना का अन्त आ पहुँचा है । मुझे लक्षण कुछ शुभ नही दिखाई देते ।

सतीश—यों साहस छोड़ोगी तो कैसे काम चलेगा ?

किरण—नही भैया । विपत्ति मुँह फैलाए खड़ी है । आज ही एक पत्र आया है कि इनके कोई मित्र चार पाँच हजार कर्जा इनके नाम लिखाकर विष खाकर मर गए हैं । वकील वह कर्जा इस घर की ईंट तक बेचकर पूरा करना चाहता है ।

सतीश—यह तो बड़ा बुरा हुआ ।

किरण—किस्मत की रेखा किसने मिटाई है, भैया ! (श्वास लेती है) अब तुम ही बताओ, कि इसके बाद मेरे लिए नौकरी करना ठीक होगा या भीख माँगना ।

सतीश (कुछ चिढ़े से स्वर में)—यह उपेन भैया से पूछना ।

किरण—मैं उन्हें खूब जानती हूँ । वे अनाथ पर दया करके उसे आश्रय दे देंगे, पर सारा जीवन दूसरे का मन प्रसन्न रखकर बिताना कितना कठिन है । मुझ से गलती हो सकती है । यदि उससे वे नाराज हो गए तब । तब भी तो मुझे राह खोजनी पड़ेगी ।

सतीश—आपसे कोई भूल हो सकती है इसकी मैं कल्पना भी नही कर सकता ।

किरण (गम्भीर श्वास लेती हुई)—यह कौन कह सकता है ? मैं भी तो आखिर मनुष्य ही हूँ।

सतीश—ऐसी अवस्था मे उपेन्द्र भैया के अलावा मै भी तो हूँ। आप मुझे छोटा भाई समझें।

किरण—किन्तु समस्या तो वही है। बहिन अपराध कर बैठे तो क्या छोटा भाई माफ कर देगा ?

सतीश—मै आपका तात्पर्य नही समझ रहा। यदि आप मेरी उस दिन की बात से नाराज हो तो मुझे क्षमा करिए। तब मैंने आपको पहचाना नही था। अब मै आपकी पूजा करने लगा हूँ।

किरण—अच्छा छोडो। अब तुम बहुत थके हो, घर जाकर आराम करो। इतनी मेहनत से बीमार पड जाओगे।

सतीश (हँसकर)—मै दो-चार दिन की मेहनत से बीमार हो जाऊँगा और आप ? एक महीने से न कुछ खाती हैं न सोती हैं, आपको कुछ नही होगा ?

किरण—मै स्त्री हूँ सतीश भैया। स्त्रियाँ क्या कभी बीमार होती हैं, या मरती हैं। तुमने कभी सुना है कि बिना देखभाल के या अत्याचार से कोई औरत मर गई।

सतीश (हँस कर)—मैंने तो सुना है स्त्रियाँ अमर होती हैं।

किरण—ठीक ही सुना है। जिसके शरीर मे प्राण होते हैं वही तो मरता है। विधाता ने स्त्री को प्राण ही कहाँ दिए हैं जो वह मरे। मेरी तो धारणा बन गई है कि स्त्री जाति को गले मे रस्सी बाँधकर दस बीस वर्ष लटका दे तो भी वह नही मरेगी।

सतीश—ऐसा न कहो भाभी। सुनने से भी पाप लगता है। आप जैसी पवित्र नारी के मुँह से यह तुच्छ परिहास अच्छा नही लगता। अच्छा'……लो अब मै जाता हूँ।

(फ्लैश बैक समाप्त)

किरण—सतीश बाबू चले गए जमुना। उसके बाद उपेन्द्र बाबू मेरे स्वामी की देखभाल करते रहे। एक अंग्रेज डाक्टर को भी उन्हे दिखाया पर डाक्टर क्या प्राण दे सकते हैं ? आखिर तो वह दिन आना ही था जिसकी आशंका मुझे कब से भयभीत कर रही थी। (श्वास लेकर) जमुना! मेरा सुहाग लुट गया। मैं अनाथ हो गई…… बेचारे उपेन्द्र बाबू…… उस दिन वे न होते तो मै किसका सहारा लेती। दुनिया मे मेरा कौन था (सिसकती है)

जमुना—मौत से कौन जीता है। दुःखी न हो बहूजी। तुम्हारी सास भी कितनी दुःखी होगी ?

किरण—स्त्रियो को कुछ नही होता, जमुना। उनकी तो बीमारी भी न जाने कहाँ चली गई। वे पडोसियो के साथ काशी जाने की व्यवस्था करने लगीं। पर उपेन्द्र बाबू मुझे अकेली देखकर बडे चिन्तित थे।

(फ्लैश बैक)

किरण—मेरी चिन्ता न करो देवरजी । मै दासी को साथ रखकर दिन बिता लूँगी ।

उपेन्द्र—दासी से कैसे जिन्दगी कटेगी । मैं कुछ और व्यवस्था सोच रहा हूँ ।

किरण—तो आप ऐसा कीजिए कि अपने छोटे भाई दिवाकर को मेरे पास छोड दीजिए । उन्हे आप कलकत्ते रखकर पढाना ही चाहते है, वे अकेले वहाँ कहाँ रहेंगे, उन्हें यहाँ भेज दीजिए मै देखभाल कर लूंगी ।

उपेन्द्र—भाभी, आप जैसी शुद्ध, शान्त आत्मसयमी स्त्री मैने आज तक नहीं देखी । कभी आपके विषय मे मेरा जो कुछ विचार था आज उसकी पीडा से सतप्त हूँ । आपके चरणो मे झुक कर क्षमा माँगना चाहता हूँ ।

किरण—क्यो भैया । क्या दिवाकर को मेरे पास छोडना नही चाहते ? चुप क्यो हो ? क्या यह सोच रहे हो कि मैं विधवा हूँ, जवान हूँ, अकेले घर मे दिवाकर मेरे साथ कैसे रहेगा ?

उपेन्द्र—छि छि ! यह आप क्या कह रही हैं ? यदि दिवाकर का भार आप सम्भाले तो मै अपना अहोभाग्य समझूंगा । लीजिए वह दिवाकर आ ही गया । इतनी देर से तुम कहाँ थे दिवाकर ?

दिवाकर—भाभी के कमरे मे किताबें ठीक कर रहा था ।

किरण—यह कौन सी किताब है तुम्हारे हाथ मे ?

दिवाकर—कठोपनिषद् ।

किरण—(हँस कर) ओहो इतनी किताबो मे से तुम्हें यह नीरस किताब पसन्द आई ।

दिवाकर (आश्चर्य से)—क्या कह रही हो भाभी ? उपनिषद् तो वेद समान है । उनका प्रत्येक अक्षर सत्य होता है ।

किरण (हँस कर)—न मुझे तुम्हारे वेद पर श्रद्धा है न किसी धर्म ग्रन्थ पर । किसी मे अभ्रान्त सत्य नहीं होता ।

दिवाकर—राम ! राम ! ऐसा फिर कभी मत कहिएगा । सुनने से भी पाप लगता है ।

किरण—पाप उन्हे लगता है, दिवाकर ! जो बुद्धि से काम नही लेते । मैं तो यह जानती हूँ कि सत्य मिथ्या जो कुछ हो बुद्धिपूर्वक ग्रहण करना उचित है । आँख बन्द करके मान लेने से न उसका गौरव बढता है न तुम्हारा । गलत को सत्य बना कर कहने से बढकर पाप मैं किसी को नही मानती । क्यो उपेन्द्र भैया ! तुम भी तो कुछ बोलो ।

उपेन्द्र—भाभी इस बारे मे मैं महामूर्ख हूँ । पर हाँ, आप इतनी बाते कहाँ से जान गईं ।

किरण (हँस कर)—जिन्दगी भर तुम्हारे भैया कठोर शिक्षक बनकर यही सब तो पढाते रहे ।

उपेन्द्र—अच्छा, अरे ! दिवाकर तुम अभी तक खडे हो । तुम्हे अब भाभी के पास ही रहना होगा । जाओ, अपना सब सामान लेके यहाँ आ जाओ ।

दिवाकर—जाता हूँ भैया ।

किरण—जल्दी आना दिवाकर, मैं तुम्हारी राह देखती रहूँगी । (दिवाकर के जाने की आवाज) देवरजी, मैं तुमसे धर्म के बारे मे कुछ पूछना चाहती थी ?

उपेन्द्र—मैंने कहा न कि मैं उस बारे मे कुछ नही जानता ।

किरण—धर्म के बारे मे नही जानते तो काव्य तो आपने जरूर पढे होगे । अच्छे-अच्छे काव्यो मे प्रथम दर्शन मे ही प्रगाढ प्रेम की चर्चा...

उपेन्द्र—अच्छे बुरे किसी काव्य के बारे मे मुझे अधिक जानकारी नही है ।

किरण—टालने की कोशिश न करो । इतना पढकर यह तो जानते ही होगे कि प्रेम को अन्धा क्यो कहते हैं ?

उपेन्द्र—इसलिए कि आँखें रहते मनुष्य जिस राह पर नही जाता प्रेम उसी राह पर ले जाता है ।

किरण—किन्तु अन्धा आदमी यदि गड्ढे मे गिर जाए तो लोग दौडकर उसे निकालते हैं, उस पर सहानुभूति करते हैं, पर प्रेम मे अन्धा आदमी जब गिरता है तो उसे निकालने के बजाय लोग उसके हाथ पैर तोड डालते हैं । उसे कठोर सजा देकर बहादुरी दिखाते हैं । उस समय वे भूल जाते हैं कि उनका भी इसी तरह गिरना असम्भव नही है ।

उपेन्द्र—यह सब कहने मे आपका तात्पर्य क्या है ? आप इन सबसे बहुत दूर हैं ?

किरण (आश्चर्य से)—वह कैसे ?

उत्तर—क्यो आपके आँखें हैं ।

किरण—यह तुम्हारी भूल है । आँखे रहते जो नही देख पाते वे और भी भयकर होते हैं । वे स्वय ठगे जाते हैं और दूसरो को भी ठगाते हैं ।

उपेन्द्र—पर आपकी आँखें वैसी नहीं हैं । पति की मृत्यु के समय आपकी आँखो मे जो प्रकाश था वह कभी आपको गलत रास्ते पर नही ले जा सकता ।

किरण—तब तुमने कुछ नही देखा । मुझे तो स्वामी से प्यार था ही नहीं । पर इतना जरूर है कि उनकी मृत्यु के समय जो मेरी अवस्था थी उसमे छल बिल्कुल नही था । तुम्हे देखकर मेरे हृदय मे प्रथम बार प्यार की जो भाव उत्पन्न हुई वही पति सेवा के रूप मे प्रकट हुई—पर—वह भी अधूरी रह गई । इस विषय मे तुम मेरे गुरु हो देवरजी ।

उपेन्द्र—मुझे लज्जित न करो, भाभी ! आज मेरा चित्त बड़ा उद्विग्न है ।

किरण—अभी से उद्विग्न होने लगे, अभी तो मुझे बहुत कुछ कहना है तुमसे ।

उपेन्द्र—क्या कुछ विशेष बात कहनी है ?

किरण—विशेष ही समझो । तुमने वह डाक्टर देखा था । वही अनंग मोहन ।

उपेन्द्र—शायद एक बार देखा था । क्या हुआ उसका ?

किरण (रुककर)—कहते लज्जा आती है। एक तरफ वह इलाज करता था और दूसरी तरफ' क्या कहूँ, सुन कर तुम मेरा मुँह देखना पसन्द नही करोगे।

उपेन्द्र—रहने दीजिए फिर कभी '

किरण—नही आज तुम्हें सुनाना ही चाहती हूँ। जानते हो जिस प्यास से मनुष्य नाली का गन्दा पानी पीकर तृप्त होता है, मेरी भी कुछ ऐसी ही प्यास थी। इसे बुझाने की लालसा मे मैंने वह दूषित जल गले उतार लिया। पर होश तब हुआ जब विष शरीर तक पहुँच चुका था। मैंने कितनी बार उसे उगलने की कोशिश की पर स्वार्थी सास ने मेरा मुँह दबा दिया। तब से जिस घृणा और आसक्ति के भयकर सघर्ष मे मैंने दिन बिताए हैं उसकी वेदना तुम्हें कैसे बताऊँ?

उपेन्द्र—मैं आपकी स्थिति का भली प्रकार अनुमान कर पा रहा हूँ।

किरण—उपेन्द्र भैया। तुमने मेरा उद्धार कर दिया है, बिल्कुल वैसे जैसे अहिल्या का रामचन्द्रजी ने किया था। तुमने मुझे अमृत दिया है मैं तुम्हे प्यार करती हूँ। तुम पर मुझे अटूट विश्वास है।

उपेन्द्र—अच्छा भाभी। अब तो रात बहुत हो गई, मुझे आज्ञा दें।

किरण—दिवाकर को तो भेजोगे न ?

उपेन्द्र—अवश्य भेजूंगा। मेरा विश्वास है कि आपके हाथो उसका कोई अमगल नही होगा।

(फ्लैश बैक समाप्त)

किरण—उसके बाद जमुना, दिवाकर मेरे पास रहने लगे। मैंने उसे बच्चे की तरह दुलार किया। उसकी एक-एक बात का ध्यान रखा। मैं घण्टों उसके कमरे मे बैठ कर किताबो के बारे मे बात करती रहती। वह कभी थक जाता तो उसका सिर सहला देती। बिछौना बिछा देती।

जमुना—ठीक ही तो है। जब तुमने उसे बच्चा समझा तो सब करना ही पड़ता है। उसका दूसरा था भी कौन ?

किरण—पर जमुना।

जमुना—क्या बहूजी ?

किरण—दुनिया बड़ी पापी है। दूसरो के दोष देखने और बिना बात लाँछन लगाने मे उसे कितना आनन्द आता है। मै तो सोचती हूँ कि दुनिया की माया मिलने पर भी उसे इतनी खुशी नहीं होती होगी जितनी किसी को दोषी ठहराने मे।

जमुना—दुनिया है तो ऐसी ही बहूजी।

किरण—मेरी सास मुझ पर शक करने लगी। दिवाकर उन्हे जहर दिखाई देने लगा। एक दिन उपेन्द्र बाबू ने घर के दरवाजे पर उनकी सारी बाते सुनली। जब वे अन्दर आए तो नमक मिर्च लगाकर वे न जाने क्या-क्या सुनाने लगी। सुनकर उपेन्द्र बाबू के क्रोध का ठिकाना न रहा।

(फ्लैश बैक)

उपेन्द्र (क्रोध में)—भाभी दिवाकर कहाँ है ?

किरण—कमरे मे सो रहा है। तुम बैठो मैं उन्हे बुलाती हूँ। ओह ! तुम्हारे लिए कुछ खाने को भी लाती हूँ।

उपेन्द्र—मैं यहाँ खाने के लिए नही आया हूँ। आपसे दो बात करने आया हूँ।

किरण—मेरा अहोभाग्य है। कहो ! पर कुछ खाते भी जाओ।

उपेन्द्र (तीखी आवाज मे)—आपका छुआ खाने मे मुझे घृणा मालूम होती है।

किरण—घृणा होने की बात ही है। तुम्हारी घृणा दिवाकर के कारण ही तो है। पर तुम्हारे मुख से ऐसी बात सुनूँगी इसकी मुझे स्वप्न मे भी आशा नही थी। इसके साथ मेरा कैसा सम्बन्ध है, यह तुम लोगो का केवल अनुमान है। एक दिन तुम्हे भी तो मैंने प्यार से खिलाया था। जब मैंने खुलकर तुम पर प्रेम प्रकट किया था तब तो तुमने थाली सामने से नही हटाई थी। तब क्या पराई स्त्री के हाथ की मिठाई में अधिक मिठास था ? बोलो न ?

उपेन्द्र (व्यग्य और क्रोध से)—मैं बहस नही करना चाहता। इतना जानता हूँ कि आप किसी को प्यार नही कर सकती यह आपके बूते के बाहर है। आप केवल सर्वनाश कर सकती हैं। छी छी ! अन्त मे दिवाकर को—

किरण—नाराज न हो, देवरजी। मैं तुम्हारे पाँव छूकर कहती हूं, यह सब झूँठ है, बिल्कुल झूँठ है। जरा बुद्धि से विचार तो करो। मैं दिवाकर को....

उपेन्द्र—यह अभिनय किसी और को दिखाना। मैं आपकी सूरत नही देखना चाहता।

(फ्लैश बैक समाप्त)

किरण—उपेन्द्र बाबू चले गए जमुना। दिवाकर भी घर लौटने की तैयारी करने लगा।

जमुना—तब क्या दिवाकर भैया चले गए ?

किरण—नही जमुना। मेरे दुर्भाग्य की कहानी यही खत्म नही होती। उपेन्द्र बाबू के व्यवहार से मैं तिलमिला उठी। बदले की भयकर आग मुझे जलाने लगी। चोट खाई सर्पिणी क्या किसी को आसानी से छोडती है।

जमुना—तो तुमने क्या किया बहूजी ? उपेन्द्र बाबू फिर कभी मिले।

किरण (तीखी आवाज मे)—वे नहीं मिले तो क्या, दिवाकर तो अभी मेरे पजे मे था।

जमुना—पर उस विचारे का क्या दोष? उस बच्चे से बदला कैसे लिया होगा?

किरण—मैंने उसे अपने साथ घर से भागने के लिए राजी कर लिया। दासी ने बताया कि अराकान के लिए आज ही जहाज छूट रहा है। हम दोनो उसी जहाज पर पहुँच गए। भय से दिवाकर का बुरा हाल था। अब क्या होता, जहाज तो छूट चुका था।

(फ्लैश बैक) (जहाज का साइरन)

दिवाकर (रोनी आवाज मे)—भाभी तुमने मुझे यहाँ लाकर ठीक नहीं किया। मुझे कहीं का नहीं रखा। अपने भैया को कैसे मुँह दिखाऊँगा ? दुनिया क्या कहेगी ?

किरण (हँसकर)—रोओ मत दिवाकर, उपेन भैया क्या तुम्हें खा जाएँगे। क्या मैं तुम्हारी कुछ नहीं हूँ ? क्या तुम मुझसे जरा भी प्यार नहीं करते ? उठो, नहालो खाना तैयार है।

दिवाकर—मैं नहीं खाऊँगा। मुझे भूख नहीं है। आप खाइए।

किरण—यह कैसे हो सकता है (हँसकर) अब तो तुम्हीं मेरे स्वामी हो। तुम्हारी थाली का प्रसाद खाकर ही नारी जन्म सार्थक करूँगी। (जोर से हँसती है)

दिवाकर—मैं इस कैबिन मे नहीं रहूँगा। मैं बाहर जाना चाहता हूँ।

किरण (व्यग्य से)—यह नहीं हो सकता। यह तो चक्रव्यूह है देवरजी। इसमे भीतर आने की राह तो है, निकलने का रास्ता सबको नहीं आता। अगर बाहर जाने की इच्छा थी तो यह विद्या अपने भैया से सीखकर आते। (हँसती है)

दिवाकर—मुझे इतने तीखे व्यग्यो से न छेदो भाभी। मैं तुम्हारे हाथ जोडता हूँ। मैं तो बाहर इसलिए जाना चाहता हूँ कि जहाज के लोग हमे पति-पत्नी समझ रहे हैं।

किरण—वे कुछ भी समझें, मैं तुम्हें बाहर न सोने दूंगी। जब तक जहाज मे हो, मेरा कहना मानना ही होगा।

दिवाकर—पर, मैं यहाँ नहीं सो सकता चाहे आप कुछ भी कहो।

किरण (क्रोध से फुँकारती सी)—तुम क्या सोचते हो किसी भले घर की बहू को घर से निकाल लाना इतना आसान है। तुम दूध पीते बच्चे तो नहीं जो इसका परिणाम न जानते हो। तुमने सोचा होगा कि सारा अपराध मेरे सिर थोप भैया के सामने साधु बन जाओगे।

दिवाकर—व्यर्थ ही नाराज होने से क्या लाभ। मैंने तो ऐसा कुछ नहीं कहा।

किरण—कान खोलकर सुनलो। जिस अपराध के बोझ से मेरा सिर झुकाने की चेष्टा उपेन्द्र ने की है, उन्हें भी मैं सिर उठाने लायक नहीं रहने दूंगी। मैं तुम्हें अपने बाहुपाश मे कसकर तुम्हारे अपने भैया को अपना और तुम्हारा सम्बन्ध दिखा देना चाहती हूँ। देखती हूँ, तुम कब तक बचोगे। हो तो मनुष्य ही, पत्थर तो नहीं हो।

दिवाकर—भाभी तुम इतनी उत्तेजित होकर मुझसे क्या कहलाना चाहती हो ?

किरण—यही कि तुमने मेरे साथ भागकर कोई पाप नहीं किया। मैं विधवा हूँ, तुम अविवाहित हो, दोनों पर किसी हृदय का अधिकार नहीं, अत मुझे प्यार करके तुमने कोई अपराध नहीं किया।

दिवाकर—किन्तु जो प्रेम, विवाह द्वारा पवित्र न हो, समाज उसे स्वीकार कब करेगा ? अगर यह अवैध प्यार अपराध नहीं तो संसार में अपराध क्या है ?

किरण—तुम अपने पवित्र सस्कारो और समाज भय के कारण ऐसा सोचते हो । दुनिया मे वैध-अवैध कुछ नही है । केवल ढकोसला है । बुद्धि और युक्ति से सोचो तो तुम्हे सच्चाई मालूम हो जाएगी ।

दिवाकर—बुद्धि और युक्ति से भले ही यह काम ठीक हो किन्तु समाज मे रहकर समाज को चोट पहुँचाना, क्या ठीक है ?

किरण—समाज जब उद्धत होकर अपने अधिकारो की सीमा लांघता है तो उसको चोट पहुँचानी ही पडती है । इस आघात से समाज मरता नही, उसके होश ठिकाने आ जाते हैं ।

दिवाकर—पर मुझे तो ऐसा नही दिखाई देता कि हमने जिस प्रकार का प्रहार किया है, उससे समाज के होश ठिकाने आ जाएँगे ?

किरण—यदि सचमुच तुम्हे इतना डर लगता है तो लौट जाओ । लौट जाओ । दिवाकर ।

दिवाकर (आश्चर्य और दुःख से)—लौट जाऊँ । कहाँ लौट जाऊँ । अब मेरा कहाँ ठिकाना है । उपेन्द्र भैया को मुँह दिखाने से तो आग मे कूदना कही अच्छा है ।

(फ्लैश बैक समाप्त)

किरण—जमुना, हारकर दिवाकर मेरे साथ रहने को राजी हो गया । वह तुच्छ दिवाकर जिसे मैंने कभी प्यार नही किया, दुर्भाग्य से उसी के साथ प्रेम का अभिनय मुझे करना पडा । ईश्वर मेरा साक्षी है उस समय मेरा हृदय मुझे कितना धिक्कार रहा था ।

जमुना—वह, दिवाकर का क्या हाल था । क्या अब वह तुम्हे प्रेम करने लगा था ।

किरण—प्रेम ! प्रेम का नाम न लो, जमुना । प्रेम क्या करता । मेरे प्रेम के दिखावे ने उस जवान लडके के हृदय मे वासना की भूख जगा दी । मैंने कितनी और कैसी-कैसी यातनाएँ सही किन्तु उसे अपने निकट न आने दिया । वह मुझे गाली देता, मारता पर मैंने सब सह कर भी उसे दुष्कृत्यो से दूर रखा ।

जमुना—तुम जिस मकान मे रहती थी उसके लोग तुम पर शक नही करते थे ?

किरण—शक तो तब करते जमुना, जब वे मुझे कोई गृहस्थी औरत समझते । अराकान के जिस मकान मे मै रहती थी उसकी मालकिन बडी दुश्चरित्र थी । वह मुझे भी वैसी ही समझती थी । उसने कई बार ऐसी हरकते की कि दिवाकर मुझे पतित समझने लगा ।

जमुना—दुनिया का यही कायदा है । सही बातें देखने को उसके पास आँखें ही कहाँ है ?

किरण—रोज के झगडो से तग आकर मैने दिवाकर को देश लौट जाने के लिए विवश किया ।

(फ्लैश बैक)

दिवाकर—भाभी ! इतनी जल्दी आ" मुझे क्यों लौटाना चाहती हैं। क्या एक रात भी यहाँ नहीं रहने दोगी। मेरा सर्वनाश करने के लिए ही यहाँ लेकर आई थीं ? क्या तुमने एक दिन भी मुझे प्यार नहीं किया ?

किरण—सर्वनाश तुम्हारा नहीं तुम्हारे भाई उपेन्द्र का। इसी इरादे से तो तुम्हें यहाँ लाई थी। और मेरा . जाने दो मैंने शुरू से अन्त तक गलती ही गलती की है। मुझे क्षमा कर दो। और रही प्यार की बात, कौन कहता है कि मैंने तुम्हें प्यार नहीं किया। मैं तुमसे उम्र में कितनी बड़ी हूँ। तभी तो उपेन्द्र भैया ने तुम्हें मेरे हाथों सौंपा था। मैंने तुम्हें छोटे भाई की तरह अपने बच्चे की तरह प्यार किया है। तुम्हारी लाज रखकर भी तुम्हें कुपथ पर नहीं जाने दिया। तुम्हारे मन का पाप तुम्हें स्वर्ग देगा या नरक, यह तुम जानो। मेरी आत्मा निर्दोष है।

अब तुम जाओ। मेरा भाई सतीश कभी तो मुझे मिलेगा।

(फ्लैश बैक समाप्त)

जमुना—बहुजी। क्या तुम्हें सतीश भैया मिल गए थे। तुम कलकत्ते कब लौटी ? किसके साथ ?

किरण—कुछ दिन बाद मेरे घर की दासी से मालूम करके सतीश मेरा कान आए। मेरी दयनीय अवस्था देखकर बड़े दुखी हुए। वे मुझे और दिवाकर को घर लौट चलने के लिए विवश करने लगे।

(फ्लैश बैक)

सतीश—भाभी। आपको घर चलना ही पड़ेगा।

किरण—तुम्हें उपेन भैया ने भेजा है न। तो उनके दिवाकर को ले जाओ। मैं नहीं जाऊँगी।

सतीश—पराये हुक्म की तामील के लिए मैं इतनी दूर नहीं आया।

किरण—मैं किसके पास जाऊँगी, भैया मेरा कौन है ?

सतीश—मेरे पास चलोगी, मैं तो हूँ।

किरण—पर तुम जैसी औरत को आश्रय देना क्या ठीक रहेगा ?

सतीश—यह बात तो बहुत दिन पहले तय हो गई है। मैं आपका छोटा भाई हूँ। विचार करने का अधिकार मुझे है।

किरण—लेकिन समाज भी तो है।

सतीश (रुक कर)—ना, नहीं है। जिसके पास धन और बल है, समाज को विरुद्ध बोलने का साहस नहीं है। मेरे पास ये दोनों ही चीजें जमा हो गई हैं।

किरण—भैया ! धन और बल के जोर से तुम समाज की उपेक्षा कर सकते हो, लेकिन अपनी स्वयं की घृणा से इस पतिता को कैसे बचाओगे ?

सतीश—मैं तुम्हारे इस तर्क का जवाब नहीं दे सकता। मैं तो यह देखना जानता हूँ कि किसने क्या काम किया है ? तुम्हारी पति सेवा मैंने आँखों से देखी है, वही तुम अपनी हो सकती हो, ऐसा मर जाने पर भी विश्वास नहीं करूँगा।

—

किरण—आज तुमने मेरा कितना बोझ हल्का कर दिया है। मै आज बहुत खुश हूँ।

(फ्लैश बैक समाप्त)

किरण—बडी खुशी से घर लौट रही थी जमुना, पर भगवान ने जिसके नसीब मे खुशी लिखी ही न हो उसे कैसे खुशी मिले। कलकत्ते के स्टेशन पर ही मालूम हुआ कि उपेन्द्र बाबू बहुत बीमार हैं, उनकी अन्तिम घडियां हैं। मेरे प्राण उन्हे देखने को तडपने लगे। पर वहां न जा सकी।

जमुना—क्या, सतीश बाबू आपको वहां नही ले गए ?

किरण—मै पतिता जो थी जमुना। उपेन्द्र बाबू मुझे कैसे देखते। उन्होने नौकर से मुझे वहां आने के लिए मना करा दिया। उस दिन मुझे जो धक्का लगा उससे मैं मस्तिष्क खो बैठी, पागल सी होकर सडको पर घूमने लगी।

एक दिन उपेन्द्र बाबू के घर जाकर उनके दिवाकर को उन्हे सौप आई। मैंने उनसे कह दिया जमुना, तुम दिवाकर को दुख मत देना देवरजी। तुमने जैसा इन्हे मेरे हाथ सौपा था, उस सत्य को मैंने एक दिन के लिए भी नही तोडा। मैने इनकी प्राण पण से रक्षा की है।

उपेन्द्र बाबू परलोक सिधार गए यमुना। पर मेरी क्या दशा हुई है। एक दिन समाज को, धर्म को अँगूठा दिखाने के लिए मैने इतना बडा नाटक रचा। एक अबोध पुरुष को अपने मिथ्या जाल मे फँसाकर मैंने क्या पाया। आज मै अपनी ही ज्वाला मे जल रही हूँ। काश, उपेन्द्र मेरे हृदय को समझ पाते।

14

मन्थरा का पश्चाताप

नाट्य रूपक

पात्र—(1) कैकेयी (2) पारो (3) मन्थरा (4) पड़ोसियों का समवेत स्वर

कैकेयी के महल के पिछले भाग से किसी स्त्री के जोर से रोने और सिसकने की आवाज आ रही है। पड़ोसिनें रोने की आवाज सुनकर एक-दूसरे से पूछती हैं आज यह रोने की आवाज कहाँ से आ रही है। कोई इधर जाकर तो देखो। "पारो तू देखकर आ—यह आवाज तो मन्थरा बहिन के घर की ओर से आती जान पड़ती है, अवश्य वहीं कुछ हुआ है। अच्छा मैं जाकर पूछती हूं।"

पारो—(दरवाजे पर टक्-टक् की आवाज करती हुई पुकारती है) "मन्थरा बहिन! मन्थरा बहिन! आज यह रोना कैसे मचा हुआ है। बाहर आओ बहिन। (सहसा मन्थरा को आती देखकर चौंकती है) हैं... यह क्या। तुम्हारे दाँतों से खून बह रहा है? माथे पर चोट लगी है? क्या कोई दुर्घटना हो गई? कहीं गिर पड़ी? क्या हुआ?—(मन्थरा और जोर से सिसकती है)।

पारो—शान्त हो बहिन। धीरज रक्खो। पहले तो यह बताओ कि आखिर हुआ क्या? मैं तुम्हारी पड़ोसिन हूं, सखी हूं। तुमने मुझे भी कुछ नहीं बताया।

मन्थरा—(सिसकते हुए) पारो मैं बड़ी अभागिन हूँ। मुझे जी भरकर रोने दे। अब जीवन में रोने के सिवा रखा ही क्या है?

पारो—(आश्चर्य से) क्या कहा? अभागिन! तुम और अभागिन। अभागी हों तुम्हारे वैरी। हम सब में तुम्हीं तो एक भाग्यशाली समझी जाती हो। हम में कौन ऐसी है जिसे उसकी स्वामिनी इतना चाहती है। तुम अपनी स्वामिनी की मन चहेती धायमन्नी हो। हर बात में वे सलाह तुम से लेती हैं। प्राण देने को तैयार रहती हैं। तुम्हीं तो कहा करती थी कि...

मन्थरा—(टोकते हुए) मत दुहराओ बहिन। अब यह नहीं सुना जाता।

पारो—अरे ! अब तो कैकेयी राजमाता होने जा रही है। तुम्हारी पाँचो घी मे है और तुम न जाने क्या बहकी-बहकी बोल रही हो ?

मन्थरा (दुख से)—नही पारो, नही। तू मेरी व्यथा नही समझेगी। मै सचमुच बडी अभागिन हूं। आज अयोध्या मे मुझ-सी दुखिनी और कोई नही मिलेगी। मै हतभागिनी भला करने चली थी पर सब उलटा हो गया। मेरी इस दुर्गति का कारण मै स्वय हूं। देख मेरे दाँत टूट गए हैं, माथा फूट गया है और देख कूबड मे कितनी गहरी चोट आई है। आह (सिसकती है।)

पारो—दुखी मत हो, बहिन ! भाग्य की रेखाएं किसने पढी है ? मैंने तो तुम्हे सदा हँसते देखा है। मै सोच भी नही सकती कि तुम्हारी इस दुर्गति का कारण क्या है ? तुम पर यह महान् विपदा कैसे टूट पडी ?

मन्थरा—पारो ! तुझे कैसे बताऊँ। आज मेरे हृदय पर पहाड-सा बोझ रखा है। मै क्या करने चली थी और क्या हो गया ? भगवान् ने शरीर पहले से ही कुरूप बनाया था। आज मेरा हृदय भी सब की आँखो मे नीच, पापी और कलुषित ठहरा दिया गया है। (लम्बी साँस लेकर) हे भगवान् ! मैंने तेरा क्या बिगाडा था जिसका इतना बडा दण्ड तूने दिया है।

पारो—(आश्चर्य से) महारानी कैकेयी के रहते तुम्हे कोई दण्ड दे सकता है यह मेरी समझ मे नही आता। सुना है अभी भरत और शत्रुघ्न ननिहाल से लौटे हैं। अब राजतिलक की तैयारी होने वाली होगी। ऐसे सुख के अवसर पर तुम्हारा दुख मैं नही समझ पा रही। बहिन मेरा हृदय बहुत अशान्त हो गया है। अब पहेली न बुझाओ। साफ-साफ कहो। मैं बिना सुने तुम्हे अकेली छोडकर नही जाऊंगी।

मन्थरा—सुन पारो ! मेरा ससार उजड गया है, मुझे चारो ओर अन्धकार दिखाई देता है। मन करता है किसी कुएँ मे कूद पडूं, गले मे फन्दा लगा लूं। आह क्या करूं। मै बडी पापिन हूं। (सिसकती हुई)।

पारो—व्यथित न हो बहिन ! सब ठीक होगा।

– मन्थरा—पारो ! राजकुल की रीति बडी विचित्र है। किसी ने ठीक ही कहा है। "राजा जोगी अगन जल इनकी उलटी रीति।" राजा कब प्रसन्न हो सर्वस्व निछावर कर देंगे, और कब क्रोध में शूली पर चढा देंगे, कौन जान सकता है ? हे ईश्वर ! राज परिवार मे किसी को दासी मत बनाना। बडे लोगो की बडी बातो मे छोटे लोग बिना बात पिस जाते हैं।

पारो—मुझे अपना समझकर सब बातें विस्तार से बताओ बहिन। तुमने मेरी उत्सुकता जगादी है, अब सुनकर ही जाऊंगी।

मन्थरा—अच्छा पारो, तू नही मानती तो सुन ··

(फ्लैश बैक)

(अयोध्या मे राम के राजतिलक की तैयारी 'चारों ओर मे वाद्यन्त्रों का घोष गूंज रहा है—सब तरफ चहल-पहल, हर्ष-उत्साह और बधाई-गानों की आवाज आ रही है। मन्थरा कुछ बडबडाती-सी, उदास मन से कैकेयी के महल मे प्रवेश करती है)।

कैकेयी—मन्थरा को देखकर-हँसती हुई-आओ, मन्थरा मैं तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रही थी।

मन्थरा—स्वामिनी! आज तो अयोध्या मे बडी चहल-पहल है। चारो ओर आनन्द का सागर उमड रहा है। सब लोग ऐसे प्रसन्न है मानो उन्हे कुबेर का खजाना मिल गया हो। सुना है कि महाराज दशरथ कल राम को युवराज पद देंगे। उनका राजतिलक होगा।

कैकेयी—(प्रसन्न मुद्रा मे) तेरे मुंह मे घी शक्कर मन्थरा। पर तू उदास क्यो है ? तू स्वस्थ तो है। इससे बढकर खुशी की बात क्या होगी ? तू इस तरह गुमसुम खडी आंसू क्यो बहा रही है ? कुछ कह तो सही। हर्ष के अवसर पर इस तरह रोनी सूरत बनाना क्या तुझे शोभा देता है ?

मन्थरा—(रुंआसी होकर) स्वामिनी, तुम बडी भोली हो। तुम्हे वही जान सकता है जिसने तुम्हें बचपन से देखा हो। मैं तुम्हारी बचपन की साथिन हूँ। मैं जानती हूँ कि तुम्हारा हृदय कितना भोला, कितना पवित्र है तुम दूसरे के सुख से सुखी होने वाली हो। तुम्हारे साथ कोई छल कर सकता है, यह तो तुम सोच ही नही पाती। राजा तुम्हारे वश मे है बस इसीलिए फूली-फूली फिरती हो ?

कैकेयी—क्या उलटी-सीधी बातें कर रही है। क्या कहना चाहती है, साफ-साफ कह। मुझे चापलूसी तनिक भी पसन्द नहीं है।

मन्थरा—स्वामिन! मैं उलटी-सीधी नही कह रही। सच कह रही हूँ। आज कौशल्या सबसे ज्यादा सुखी है। तुम जाकर देखो तो सही। भरत इस समय ननिहाल मे है उसका भी तुम्हें सोच नही है। समझती हो, राजा तुम्हारे बस मे है बस यही बडी बात है।

कैकेयी—(क्रोध से) चुप पापिनी। ऐसी बात मुंह से निकाली तो जीभ खींच लूंगी। तेरे जैसे काने, कूबडे लोग ऐसी ही नीच बातें सोचते हैं।

(फ्लैश बैक समाप्त)

मन्थरा (पारो से)—मैं इतनी अपमानित होकर यदि अपने घर लौट आती तो कुछ नहीं बिगडता। रानी ने मुझे कहनी-अनकहनी न जाने कितनी कही। पर मेरे मन मे उनके लिए जो अगाध-स्नेह, भक्तिभाव और श्रद्धा थी, उसने मेरे पांव जैसे जकड दिए हो मैं वहीं खडी सब सुनती रही। स्वामिनी के दुःख की कल्पना मात्र से मेरी आंखों से झर-झर आंसू बहने लगे। मैं चाहती थी कि रानी तनिक सोचे-विचारे कि कल क्या होने जा रहा है ? आखिर कैकेयी मेरे आंसुओ से द्रवित हुई। स्नेह से उन्होंने मुझ से पूछा।

(फ्लैश बैक)

कैकेयी—सच बता मन्थरा तुझे क्या दुःख है ? मेरी प्यारी सखी। तू क्यो इतनी व्याकुल हो रही है। आज तू जो कहेगी वही तुझे दूंगी। क्या बात है, सच-सच बता।

मन्थरा—स्वामिनी! कुछ बात नही है। मेरा स्वभाव तो जलाने लायक है। कोई राजा बने मुझे क्या। मैं दासी हूँ। दासी रहूँगी। मैंने यह देखा कि आप लोगो के मुंह पर जो मीठी-मीठी बातें करते हैं वही आपको अच्छे लगते हैं। मेरा दोष इतना है कि मैंने तुम्हे सच बात कहनी चाही थी, वही तुम्हे बुरी लग गई।

कैकेयी—नही मन्थरा। यह बात नही। हर्ष की बात सुनाकर तेरी रोनी सूरत मुझे तनिक अच्छी नही लगी। आखिर राम के राजा बनने पर ससार मे ऐसा कौन प्राणी है जो प्रसन्न नही होगा। अब बता तू क्या कहना चाहती है।

मन्थरा—रानी। मैं किस लायक हूँ जो तुम्हें कुछ कहूं। बचपन से तुम्हारा अन्न खाया है इसलिए तुम्हारे हित की बात लाख प्रयत्न करने पर भी चित्त से नही उतरती।

कैकेयी—(आश्चर्य से) मेरे हित की बात। मेरा क्या अहित हुआ है ? मैं तो आज सबसे ज्यादा सुखी हूं। राम मुझे अपने पुत्र से बढ कर प्यारे हैं। वे मुझे प्यार करते हैं।

मन्थरा—यही-तो तुम्हारा भोलापन है। स्वामिनी तनिक विचारो तो सही कि राम के राजा होने पर आपकी स्थिति क्या होगी ? राम का राजा होना मुझे भी बहुत अच्छा लग रहा है पर आगे की बात सोच कर मुझे आपकी स्थिति पर बडी करुणा होती है।

कैकेयी—मन्थरा! तेरी बात सुन कर मेरा जी बैठा जा रहा है। जल्दी बता मेरा क्या अहित होने जा रहा है ?

मन्थरा—स्वामिनी! राम के राजा होने पर तुम्हारी दशा दूध की मक्खी जैसी हो जाएगी। राजा के पीछे ही तो तुम्हारा मान सम्मान है। वे तुम्हें बहुत चाहते हैं, अत सब तुम्हारा आदर करते हैं। जब वे राजा नहीं रहेंगे तो तुम्हे कौन पूछेगा। कौशल्या तुम पर राज करेगी। तुम्हे उसकी सेवा करनी होगी। क्या तुम सपत्नियो की ईर्ष्या से परिचित नही हो। कद्रूवनिता की कहानी तुमने नही सुनी ? एक बार फिर सोचो।

(फ्लेश बैक समाप्त)

पारो—दासी के नाते रानी को उनके हित की बात बताना मैंने अपना परम कर्त्तव्य समझा। कैकेयी ने सब सोच समझकर मुझसे इस विपत्ति से बचने का उपाय पूछा। उनकी स्थिति को सुरक्षित बनाने के विचार से सहज भाव से मैंने उन्हें एक सुझाव दिया कि तुम्हारे जो दो वर राजा के पास धरोहर हैं उन्हे इस समय मांग लो। यदि राजा का मन साफ होगा तो जरूर देंगे अन्यथा मना कर देंगे और तुम्हे उनके कपट का साफ पता चल जाएगा।

पारो—मन्थरा बहिन ! वे दो वरदान क्या थे ?

मन्थरा—एक तो भरत को राज और दूसरा राम को चौदह वर्ष का वनवास ।

पारो—हाय बहिन । यह क्या किया ? क्या तुमने राम को वनवास भेजने की सीख दी थी । सर्वनाश हम सब कैकेयी को ही इनका दोषी समझते थे ।

मन्थरा—मुझ पर थूको पारो । मैं ही वह पापिनी हूँ जिसने राम को चौदह वर्ष भेजने की सलाह दी थी । मैंने सोचा था कि राम यदि अयोध्या रहेंगे तो भरत राजपद नहीं ग्रहण करेंगे । प्रजा उन्हें राज नहीं करने देगी । पर " पर मुझे क्या पता था कि बात इतनी बिगड जाएगी ।

पारो—अब क्या हो रहा है ? भरत शत्रुघ्न लौट आए हैं न ? वे क्या कहते हैं ?

मन्थरा—क्या कहते हैं पारो, उन्होंने आते ही पहले अपने पिता के लिए पूछा ।

पारो—आश्चर्य से-पिता के लिए ? महाराज दशरथ के लिए !

मन्थरा—हाँ !

पारो—उन्हें क्या हुआ ? हमने तो कुछ नहीं सुना ।

मन्थरा—वे राम के विरह में स्वर्गवासी हो गए हैं पारो ।

पारो (आश्चर्य से)—सच ! तब तो भरत बहुत दुखी होंगे । बहिन तुमने अच्छा नहीं किया ।

मन्थरा—हाँ, पारो ! आज सम्पूर्ण राजमहल पर शोक की काली घटाएँ छाई हुई हैं । सब लोग बहुत दुखी हैं ।

पारो—और कैकेयी ।

मन्थरा—वे पहले तो बहुत प्रसन्न थीं । हँस हँस कर अपने मैके की बात भरत से पूछ रही थी । किन्तु भरत ने जब पिता और राम सीता के बारे में पूछा तो उन्होंने बड़े हर्ष से सारी कथा सुनाई और कहा कि इस सब कार्य में मन्थरा ने मेरी बड़ी सहायता की है । कैकेयी मेरी प्रशंसा कर रही थी कि मैं दुर्भाग्य से उसी समय वहाँ पहुँच गई । भाग्य में लिखा था वही हुआ । मेरी दुर्दशा तुम आँखों से देख रही हो । शत्रुघ्न ने मेरी यह दशा की है । मेरे अग-अग में अपार पीडा है । हे भगवान् । मुझे उठा लो । मुझे मेरे पापो से छुटकारा दो । मुझ जैसी अभ गिनी, पापिनी ससार में किसी को मत उत्पन्न करना । मुझे शान्ति दो ! भगवान् मुझे शान्ति दो ! क्या कहूँ, कुछ कहने को शेष नहीं है । आह' '

15

गृहिणी की डायरी के कुछ पृष्ठ

(प्रथम)

15 जुलाई,

बहुत वर्षो से घर और बाहर के कार्य-भारो को साथ-साथ पूरा करते मै सोच रही हूँ कि नारी, विशेषकर नौकरी पेशा विवाहिता नारी आज कितनी विपरीत परिस्थिति मे जीवनयापन कर रही है। घर की सीमाएँ और उत्तरदायित्व ही उसके लिए कुछ कम नही थे, घर के बाहर की दुनिया अपना कर उसने अपने लिए एक ऐमा वातावरण तैयार कर लिया है जिसमे उसका व्यक्तित्व पहले से अधिक मजबूत होने की अपेक्षा और अधिक टूट गया है। वह न परिवार के मधुर सम्बन्धो की सहयोगिनी रह गई है और न बाहरी दुनिया के बन्धनरहित मुक्त-वातावरण की स्वच्छन्द परी। पगपग पर उसे अपनी सीमाएँ याद रखनी पडती हैं। उसे याद रखना पड़ता है कि वह नारी है, न केवल नारी अपितु भारतीय नारी जिमके चारो ओर सस्कारो की, मर्यादाओ की, पत्नीत्व की, मातृत्व की ऊँची-ऊँची बिना झरोखो की दीवारें हैं। मै अच्छी तरह जानती हूँ कि घर और बाहर के दो बिल्कुल भिन्न वातावरणो मे सामञ्जस्य बिठाने मे मुझे कितनी तरह के खट्टे मीठे अनुभवो और मानसिक उलझनो के बीच से गुजरना पडा है।

नौकरी करते समय चाहे कोई अकेले रहे या परिवार के बीच, समस्या मे कोई अन्तर नही पडता। दोनो ही स्थितियो मे रह कर मैने देखा है। पढने से लेकर कॉलेज मे पढाने तक और उसके बाद की न जाने कितनी स्मृतियाँ मेरे दिमाग मे आज घूम रही हैं। मै चाहती हूँ कि मेरी इन स्मृतियो की, मेरे इन अनुभवो की सहभागी और कोई भी हो इसीलिए आज कागज के इन सूने पृष्ठो पर कुछ लिख रही हूँ। किमी को अपनी बात कह कर या कुछ लिखकर उमडता मन जैसे शान्त हो जाता है, कोई समाधान नही तो हलकापन जरूर महसूस होता है।

पढ लिखकर या ऊँची डिग्रियाँ लेकर मै नौकरी करूँगी, यह मैने कभी नही सोचा था। पढने मे मेरी रुचि थी और मन भी खूब लगता था अत विवाह के बाद भी कई वर्षो तक लगातार पढती रही। लोग प्राय मुझसे पूछते थे कि जब आपको नौकरी नहीं करनी तो इतना सब पढने की, और परीक्षा के लिए सिर खपाने की क्या तुक है? तुक तो सचमुच कुछ नही थी, हाँ परीक्षा के बहाने पढने

की अपनी ललक पूरी कर रही थी। बिना किसी बन्धन के विवाहित जीवन में पढ़ पाना कितना कठिन होता है, इसे वही जान सकते हैं जो इस राह से गुजरे हैं। परीक्षा केवल साधन थी, पढ़ने के लिए अधिक से अधिक समय निकालने का। उन दिनों महिलाओं के लिए नौकरी की इतनी आपाधापी नहीं थी। लोगों को ऐसी महिलाओं की तलाश रहती थी जो पढ़ लिख कर शिक्षा के क्षेत्र में आगे आएँ। मुझसे कई बार इस तरह के प्रश्न किए गए कि पढ़ लिख कर घर में बैठी क्या कर रही हो ? कुछ काम करो जिससे दूसरों को भी तुम्हारी शिक्षा का लाभ मिले। किन्तु मुझे इस ओर विशेष रुचि नहीं थी। मै जानती थी कि यदि मैंने कुछ काम स्वीकार किया तो मुझे पति से दूर रहना होगा, दो घर बसाने होंगे और आर्थिक लाभ की अपेक्षा पारिवारिक कठिनाइयाँ अधिक उठानी पड़ेंगी। किन्तु एक कहावत है 'मेरे मन कछु और है विधना के कछु और' परिस्थिति कुछ ऐसी हुई कि बच्चों की अच्छी शिक्षा के लिए तथा अन्य कई कारणों से मुझे अपना पूर्व निश्चय छोड़ कर अध्यापन का कार्य स्वीकार करने के लिए पति से दूर घर से बाहर जाना पड़ा। शिक्षा तो फलवती हुई किन्तु शिक्षिका उस फल प्राप्ति में कितनी टूटी और कितनी बनी इसे कौन जानता है ?

25 अगस्त

गृहिणी की साधारण पदवी से कार्यशीला सेवारत गृहिणी बन जाना मेरे लिए विचित्र अनुभव है। जिन सस्कारों में मैं पली तथा विवाह के बाद जिस वातावरण में रहने का मुझे अवसर मिला उसे देखते हुए यह नया जीवन सचमुच मेरे लिए एक नई जिन्दगी और एक नई चुनौती है। जिसे बाजार में कभी अकेले कुछ खरीदने का मौका न पड़ा हो, उसे बाजार में अकेले चलने, हाथ में पर्स लेकर कुछ खरीदने और पैसे गिनने का अभ्यास करना पड़े तो कैसा लगेगा ? अकेले ताँगे में बैठकर या पैदल हाथ में छाता लेकर कॉलेज जाने में लगता है जैसे मैं नारी लोक से निकल कर किसी ऐसे नए लोक की प्राणी होती जा रही हूँ जो न नारियों का है और न पुरुषों का। मेरी कोमलता जैसे कोई छीन रहा है और व्यक्तित्व में खुरदरापन अनायास ही प्रवेश कर रहा है। अजब हालत है। सध्या समय घर लौटने की जितनी उत्सुकता रहती है उतनी ही बेचैनी भी। घर में बच्चे मेरे लौटने की प्रतीक्षा कर रहे होंगे, मुझे देखकर कितने खुश होंगे, इस सुखद कल्पना में जैसे जैसे कदम आगे बढ़ते हैं उसके साथ ही अकेलेपन की आकुलता पैरों की गति रोक देती है। घबराकर चुपके से कभी कभी रो देती हूँ, लगता है जैसे यह घर और यह शहर एक जेलखाना है जिसमे मैं स्वेच्छा से कैद हूँ। इससे बाहर निकलने का मतलब होगा जिन्दगी से हार जाना, अपने कर्त्तव्य की उपेक्षा करना, अत गाड़ी खिंच रही है।

20 सितम्बर,

पढ़ाना स्वीकार तो किया था इसलिए कि बच्चों की पढ़ाई यहाँ ठीक ढग से हो सकेगी, गाँव की अपेक्षा यहाँ स्कूल अच्छे हैं किन्तु, अनुभव यह हुआ कि

बच्चे यहां आकर बड़े बिचारे हो गए हैं। उन्हे पिता की व दिनभर माँ की अनुपस्थिति बड़ी खटकती है। सुबह कॉलेज जाने का समय पास आता देख छोटा बच्चा एक घण्टे पहले मुझसे चिपककर बैठ जाता है। मेरी साड़ी पकड़ लेता है। और जब मैं सीढियो से नीचे उतरने लगती हूँ तो जोर से फूटकर रो देता है। उसको रोता देखकर मेरी सारी शक्ति मुझसे विद्रोह कर उठती है। बड़ी विवशता है। एक ओर बिलखता हुआ बच्चा, दूसरी ओर घडी और समय की सीमाएँ। किसे तोडूं किसे अपनाऊँ ? ऐसी उलझन मे कोई भी काम क्या ठीक ढग से हो पाता है ? क्या गृहिणी के लिए यह अतिरिक्त कार्य भार उस पर बोझ नही है ? क्या कही न कही वह अपने कर्त्तव्य की उपेक्षा नही कर रही ? छोटा बच्चा प्यार माँगेगा ही, ऑफिस या अन्य कोई ऐसी जगह आपसे समय पर पहुँचने की अपेक्षा करेगी ही, तब दोनो मे कौन अधिक महत्त्वपूर्ण है ? इस सम्बन्ध मे कुछ बाते मैं कभी नही भुला पाती। जब भी कोई ऐसी चर्चा चलती है तो अनायास वे घटनाएँ चित्रपट की तरह मेरे मस्तिष्क मे घूम जाती है।

बच्चे जानते हैं कि जिस दिन छुट्टी होती है माँ घर पर रहती है। छोटे बच्चो को घर में पिता की उपस्थिति या अनुपस्थिति से कोई अन्तर नही पडता, किन्तु घर मे माँ की अनुपस्थिति उन्हे बडी खटकती है। माँ के अभाव मे वे बडा सूनापन अनुभव करते हैं। छुट्टी के दिन माँ सुबह से रात तक उनके साथ रहती है अत छुट्टी का दिन उन्हे सबसे ज्यादा प्रिय होता है। मेरा चार साल का बच्चा बराबर मुझसे पूछता रहता है "मम्मी आपकी छुट्टी कब होगी ? आपको कैसे छुट्टी मिलती है ? "मैंने उसे बताया कि छुट्टी के लिए एक अर्जी लिखकर ऑफिस मे भेजते हैं, तब छुट्टी मिलती है। उसने बडे ध्यान से मेरी बात सुनी और दूसरे दिन एक कागज के टुकडे पर कुछ टेडी-मेढी लकीरें खीचकर व एक आध अक्षर-लिखकर नीचे के बरामदे मे डाल आया। ऊपर आकर मुझसे बोला मम्मी आज आप कॉलेज नही जाएँगी, मैंने आपकी छुट्टी की अर्जी लिखकर भेज दी है। मैं चकित थी उसकी बात पर पूछा 'तुमने कहाँ अर्जी भेजी है।" उसने बडी उत्सुकता और खुशी मे भरकर मुझे वह कागज लाकर दिखाया जो वह अर्जी बनाकर नीचे डाल आया था। उस कागज को देखकर हँसने की बजाय मेरी आँखे डबडबा आयी। वह अर्जी तो क्या बच्चे के अन्तर्मन की वह व्यथा थी जो कागज की इन लकीरो से झाँक रही थी।

नौकरो के भरोसे बच्चो को छोडकर बाहर काम करने वाली माँओ के बच्चे कितने निरीह हो जाते हैं इसका प्रत्यक्ष अनुभव मुझे हुआ है। नौकर को देखकर बच्चा ऐसे सहम जाता है जैसे किसी बकरी को शेर के सामने खडा कर दिया गया हो। कारण यह कि माँ की अनुपस्थिति मे नौकर तरह-तरह से बच्चो को सताते हैं। जब माँ ही अपने बच्चे के प्रति अपना उत्तरदायित्व पूरी तरह नही निभा पाती तो नौकर से कैसे आशा की जाए कि वह बच्चे की देखभाल सावधानी से और प्यार से करे। मेरे जाने पर नौकर इस मासूम बच्चे के दोनो हाथ पकड कर खिडकी मे लटका देता है और कहता है रोओगे तो खिडकी से नीचे फैंक दूंगा। डर के मारे जब उसकी

चीख निकल जाती है तो उसकी पिटाई करता है। इसलिए मेरे जाने के समय घबराहट के कारण वह मुझ से और अधिक चिपटता है। मैं सोचती हूँ कि घर और बाहर का यह दुहरा उत्तरदायित्व ओढ कर मैंने कौनसा बड़ा तीर मारा है? वे औरतें शायद ज्यादा अच्छी हैं, जो आराम से घर मे रहकर अपना समय शान्तिपर्वक बिताती हैं। घर बाहर की कोई द्विविधा उन्हे नही है, दुनिया भर की भाग दौड की बजाय अपनी सीमित दुनिया मे चैन से रहती हैं। पर शायद यह भी मन का ही भ्रम हो कौन जाने? यहाँ तक तो मैं अपने मन की एक ही पर्त खोल पायी हूँ। ऐसी न जाने कितनी पर्तें एक के ऊपर एक जमी हुई हैं।

4 नवम्बर

मैं अब अकेले रहने की बजाय अपनी ससुराल मे आ गई हूँ। यहाँ बहुत से लोग हैं। सास श्वसुर से लेकर सभी तरह के रिश्ते यहाँ हैं। सोचती हूँ अकेलेपन की ऊब और कठिनाई जो मैं पहले अनुभव करती थी अब मिट जाएगी। यहाँ कम से कम घर देखने और बच्चो को अकेले छोडने की समस्या तो नही रहेगी। कितने सारे लोग यहाँ उन्हे प्यार करने वाले हैं, मेरा भार हल्का हो जाएगा। किन्तु सोचने की बात और होती है और यथार्थ उससे बिल्कुल भिन्न होता है। यहाँ का वातावरण और भी दूभर हो गया है। बाहर काम करने वाली बहू के लिए कोई सहानुभूति रखने की अपेक्षा यहाँ झिडकियाँ हैं, ताने हैं, चित्त की अशान्ति यहाँ दुगुनी बढ गई है।

भारतीय सयुक्त परिवार एक अजब झमेला है। इसकी योजना बनाते समय हमारे शास्त्र-निर्माता पूर्वजो को शायद कार्यशीला, नौकरी करने वाली नारी की कोई परिकल्पना नही होगी। सास की झिडकियाँ सुनकर डरी, सहमी-सी, घर के काम-काज करने वाली नारी, कभी कुर्सी पर बैठकर लेक्चर देगी या किसी ऑफिस मे काम करने जाएगी, वे इस विषय मे शायद सोच भी नही पाए होंगे। इसीलिए सेवारत नारी की सुविधा के लिए इस शास्त्र मे कोई विधान नही है। उससे सहानुभूति रखने का कोई नियम इसमे नही है। नारी, चाहे कितनी ही उन्नत और आधुनिक क्यो न हो, सयुक्त परिवार की कुछ ऐसी मर्यादाएं हैं जिन्हे तोडने का अर्थ है क्लेश, कलह और आपसी मन-मुटाव। ऐसे परिवारो मे एक बहू घर रहकर सबकी सेवा करे और दूसरी ठाठ मे साडी पहन कर बाहर काम करने जाए यह सहन करने के बाहर की बात है। समाजवाद सही अर्थों मे पुराने सयुक्त परिवारों मे तो पल रहा है। एक बहू जो बीस साल पहले की विवाहिता है और दूसरी जिसे ससुराल मे आए कुल एक महीना हुआ है, दोनो की दिनचर्या मे कोई अन्तर आने का तात्पर्य है—अशान्ति। दोनो को एक ही दिशा मे चलना होगा। पहले की बहू यदि पर्दा करती है तो दूसरी को भी घूंघट निकालना होगा। मैं बाहर खुले मुँह जाती हूँ, घर मे पर्दा करती हूँ। बाहर सिर खोल कर पुरुषो से मिलती-जुलती हूँ, बात-चीत करती हूँ। यदि सयोग से ससुराल का कोई सम्बन्धी बाहर दिखाई दे जाता है तो अचकचाकर हाथ साडी के पल्ले पर पहुँच जाते हैं और सिर ढक लेती हूँ। किन्तु टेढी तिरछी नजर से यह भी देखती जाती हूँ कि बाहर के लोग इस स्थिति मे देखकर मुझे घूंसट या पिछडी हुई तो नही समझ

रहे। सिर खोलने और सिर ढकने की यह प्रक्रिया कितनी असहनीय विषम स्थिति है इसे मेरा मन ही जानता है।

एक और कठिनाई है सेवारत नारी के लिए—बाहर जितना काम है घर मे उससे ज्यादा काम की अपेक्षा की जानी है। वह घर से बाहर जो रहती है उसकी क्षतिपूर्ति भी तो उसे करनी चाहिए। सम्मिलित परिवार मे एक बहू खाना पकाए और दूसरी सजधज कर बाहर जाए, चौके-चूल्हे के काम से बची रहे, यह कैसे सम्भव है। कौन देखने जाता है कि मैं विद्यार्थियो से ठसाठस भरे कमरो मे घण्टो खडी रहकर उन्हे पढाती हूँ, पढाने के लिए घण्टो किताबो मे सिर मारा करती हूँ, विद्यार्थियो की कठिनाइयाँ हल करने मे सिर खपाती हूँ, अत थक जाती हूँ और मुझे घर मे थोडे विश्राम की आवश्यकता है ? मैं रिक्शे पर बैठकर कॉलेज जाती हूँ और रिक्शे पर बैठकर घर वापिस आती हूँ तो इन सबकी दृष्टि मे थकने की कौन-सी बात है। मानो नौकरी केवल आने जाने की प्रक्रिया भर हो। रिक्शे मे बैठकर भी कोई थकता है। कॉलेज मे क्या रोटी पकानी पडती हैं जो थकान हो ? मैं इन सब प्रश्नो का या जिज्ञासाओ का क्या उत्तर दूं ? सच यह है कि मै किसी की दया की पात्र नही हूँ। सेवारत नारी जो हूँ। मुझे अपनी चाय-आप बनानी होगी, सबका खाना पकाना होगा और घर की एक-एक परम्परा निभानी होगी। मै भी चाहती हूँ कि ऐसा ही करूँ और यथाशक्ति करती हूँ, पर शरीर तो एक है वह कब तक साथ देगा। मन की उलझनें या तनाव शरीर को कितना तोडते हैं यह दिखाई थोडे ही देता है। सोचती हूँ मैं शायद आवश्यकता से अधिक भावुक हूँ, अत इतने गहरे जाकर परेशान होती हूँ, टूटती हूँ।

लिखने से थोडी राहत मिलती है। डायरी लिखकर ऐसा अनुभव होता है जैसे भरी हुई बदली वायु के वेग से बरसकर हल्की हो गई हो।

16

गृहिणी की डायरी के कुछ पृष्ठ
(द्वितीय)

1 जनवरी

आज वर्ष का नया दिन है। नई उमगो और नई कामनाओ का दिन। आज के दिन लोग न जाने क्या-क्या खुशियाँ मनाते हैं। मैं चाहती थी कि आज का दिन सब लोग हिलमिल कर खुशी से बिताएँ। सुबह जल्दी उठकर नहा धोकर सब एक साथ बैठकर ईश्वर से प्रार्थना करें कि नया वर्ष अच्छी तरह बीते। कहते हैं नया दिन जैसा बीतता है वर्ष के सारे दिन वैसे ही बीतते हैं। इसीलिए सुबह बड़े अच्छे मूड में सोकर उठी थी। किन्तु दोपहर होते-होते मूड बिगड़ गया। जो कुछ करना चाहती थी उनमे से एक भी काम नहीं हुआ। अनु को कितना जगाया पर वह नौ बजे से पहले सोकर नही उठा, मनु जल्दी उठ गया तो उसने इधर-उधर करते बारह बजा दिए पर नहाया नहीं। नीता अपनी सहेली के घर नए वर्ष की बधाई देने चली गई। इनसे मिलने कई लोग बाहर आ गए जो दो घण्टे तक बैठे रहे। अकेली मैं इन सबके आने की प्रतीक्षा मे पूजा मे बैठी खीजती रही। लगता है अब सारा साल खीजने में ही बीतेगा।

2 जनवरी

कल जो मूड खराब हुआ अभी तक सुधरा नहीं है। बच्चो से कोई बात मनवा लेना अब टेढ़ी खीर हो गई है। अब बच्चे माँ-बाप के कहने मे नहीं, माँ-बाप को बच्चो के कहने मे चलना पड़ता है। अनु को कितनी बार सुबह जल्दी उठने की बात कह चुकी हूँ, पर उस पर जैसे कोई असर ही नही होता। कहता है—'मम्मी मैं दिन मे बिल्कुल नहीं पढ़ सकता। रात को पढ़ाई बहुत अच्छी होती है अतः रात के तीन बजे तक पढ़ता हूँ, फिर दिन मे सोऊँ नही तो क्या करूँ?" मैंने कई बार उसे बताया है कि सुबह जल्दी उठने से स्वास्थ्य ठीक रहता है। सूरज निकलने के बाद सोकर उठने से कब्ज हो जाता है, बुद्धि कम हो जाती है। रात को निशाचरों की तरह जगना और दिन को उल्लू की तरह सोना कहाँ की मनहूसियत है। पर अनु मेरी बातो पर ऐसे हँस देता है जैसे सवेरे जल्दी उठने से मेरी बुद्धि कम हो गई है अत सारे दिन झक-झक करती रहती हूँ। मनु कहता है 'सुबह कभी जल्दी नहीं नहाना चाहिए। इससे बड़े नुकसान होते हैं। जानती हैं सुबह नहाने से शरीर का मैल उतर जाता है और शरीर की बदबू निकल जाती है अत दुगनी नींद आती है, सारे दिन ऊँघते रहते हैं, कोई काम नहीं हो पाता।' क्या अजीब तर्क है। नीता की बात और भी अजीब लगती है। वह चुन्नी ओढ़कर नही रहती।

कहती है मम्मी चुन्नी ओढने से बहिनजी बन जाते हैं, मैं बहिनजी नहीं बनूंगी।' मैं इन सबकी बातें सुनकर हैरान हूँ, अच्छी थ्योरी है सबकी। कभी सोचती हूं मुझे क्या, जो जैसा चाहे करे, पर मन नही मानता। फिर कह बैठती हूं—और बच्चे नाराज हो जाते हैं। अब तो इनकी नाराजगी से डर लगनेलगा है।

8 जनवरी

आज सुबह चाय बनाते बनाते गैस खत्म हो गई। घर मे गैस क्या खत्म होती है मेरी तो सांस जैसे चलते-चलते रुक जाती है। कम्बख्त गैस को भी आज इतवार के दिन ही जाना था। अक्सर यह इतवार को ही खत्म होती है जबकि इसकी दुकान भी उस दिन नही खुलती। छुट्टी के दिन वैसे ही कामकाज से फुर्सत नही मिलती और गैस न हो तो काम और भी दूना हो जाता है। मिनिट मिनिट पर चाय की मांग होती है और गैस के बिना चाय बनाना ओह ! जान को आफत है। न स्टोव ठीक है, न कच्चे कोयले हैं। स्टोव का पिन ढूंढो तो मिलता नही, कभी उसमे मिट्टी का तेल नदारद है तो कभी उसका वाशर ढीला है। कानी के ब्याह को सौ जोखो। क्या आफत है ? चाय न हुई, जान के लिए बवाल हो गई। सारे घर को चाय पीने का इतना शौक है कि दिन भर मे न जाने कितने दौरे चाय के लग जाते हैं और आने जाने वालो के लिए अलग बनानी पडती है। आजकल चाय का नशा शराब के नशे से भी ज्यादा बढा हुआ मालूम होता है। छोटे छोटे बच्चे भी दूध की बजाय चाय पसन्द करते हैं। आधी गैस इस चाय के चक्कर मे ही खत्म हो जाती है। सारी चीनी चाय मे खप जाती है। दूसरी कोई मीठी चीज घर मे नही बन पाती। अच्छा है आजकल डाक्टर सबको चीनी खाने की मनाही करते हैं नही तो चाय के कारण मीठी चीज के दर्शन ही नही हो पाते। कभी पढा था कि हिन्दुस्तान मे दूध और दही की नदियाँ बहती थी पर अब तो घर-घर चाय की नालियाँ बहती दिखाई देती हैं। सारे दिन प्याले तश्तरी खटकते रहते हैं।

आज छुट्टी का सारा दिन इस गैस की झकझक मे बीत गया। कितने काम आज के लिए उठाकर रखे थे, सब पडे रह गए।

9 जनवरी

सुबह से दस बजने की बडी तेजी से प्रतीक्षा कर रही हूं। कितनी बार घडी देख चुकी हूं। कब दस बजें और कब गैस वाले को फोन करूं। पर दस बजे फोन पर जो सूचना मिली है उसने रही सही साँस भी खीचली है। गैस वाला कहता है अभी शोर्टेज है। 15 दिन से पहले आपका नम्बर नहीं आएगा। गुस्से मे फोन पटक कर न जाने कितनी गालियाँ उसे दे बैठी हूं। पर इसमें उस बिचारे का क्या दोष है? जब नही है तो वह कहाँ से लाए? किन्तु अपनी झूंझल किस पर उतारूं? मेरी कठिनाई कौन जानता है? सुनते हैं प्यार मुलाहजे वालो को गैस जल्दी मिल जाती है यहाँ तो किसी से जान-पहचान भी नही। किससे कहूं। अच्छी जिन्दगी है। कहाँ तो गैस खरीदने से डरती थी और कहाँ अब उसके बिना पल भर को चैन नही। अच्छी बला लगी। अब न चूल्हा अच्छा लगता है न अंगीठी।

12 जनवरी

कल श्रीमती शुक्ला से किसी काम से मिलने गई थी। बातें करते-करते किसी प्रसंग में वे मुझसे बोलीं 'मिसेज वैश्य' आप बताइए क्या आपको नहीं लगता कि आजकल सासें बहुओं से डरने लगी हैं। मैं आपसे सच कहती हूँ कि जब मैं ब्याह कर आई थी तो सास से कितनी डरती थी। उनसे कुछ बोलते डर लगता था। उनकी सेवा करते-करते भी बुराई मिलती थी। पर अब देखती हूँ सासें बहुओं के आगे पीछे लगी रहती हैं। उनके खाने पीने का कितना ध्यान रखती हैं? उन्हें घूमने भेज देती हैं और खुद काम में लगी रहती हैं। पहले कभी ऐसा होता था। मेरी छोटी देवरानी बड़ी नसीब वाली है। मेरी सास उसकी बड़ी खातिर करती है सच-सच बताइए, क्या मैं झूठ कह रही हूँ?' श्रीमती शुक्ला की बात सुनकर मैं मन ही मन उनकी बारीक निगाह की प्रशंसा कर रही थी। उनकी बात कितने प्रतिशत सही है मैं नहीं कह सकती, किन्तु मेरा अपना अनुभव बिल्कुल ऐसा ही है। मुझे भी सास से कितना डर लगता था। सुबह उठने में देर हो जाती तो सारे दिन अपनी आफत समझ गुम हो जाती थी। देर से उठने पर सास जमीन आसमान सिर पर उठा लेती थी। किन्तु अब मैं स्वयं चाय बनाने के बाद बहू को जगाती हूँ। मुझे उनके देर से उठने पर गुस्सा नहीं आता। समय बदल रहा है। हवा के रुख के साथ चलना पड़ता है। जब अपने बच्चे ही मनमानी करते हैं तो बहू से क्या आशा की जाए। जीवन के सिद्धान्त बदल गए हैं। सास-बहू के रिश्ते को लेकर जितनी चर्चा आपस में होती है, बातचीत में जितनी भली बुरी बातें उसके लिए कही जाती हैं, लगता है अब सासें उस इतिहास को दोहराना नहीं चाहतीं। रात बिस्तर पर पड़े पड़े जिन्दगी की न जानें कितनी पुरानी बातें दिमाग में घूम गईं। कब नींद आ गई, पता नहीं।

15 जनवरी

कल से धोबी को बुलाने कितनी बार भेज चुकी हूँ पर वह कपड़े ही नहीं लाता। धोबी और जमादारनी ने जितना तंग कर रखा है मैं ही जानती हूँ। इन्हें कितना ही कहो, ये मनमानी करते हैं। आजकल तो जाड़ा है। गर्मियों में धोबी के मारे नाक में दम रहता है। छः महीने में तीन धोबी बदल चुकी हूँ पर सब एक से एक बढ़कर हैं। बहुत से धोबी खुद तो काम करते नहीं, उनकी औरतें उल्टे-सीधे कपड़े धोकर दे जाती हैं। हर साल इनके बच्चे होते हैं। एक साल में नौ महीने धुलाई की गड़बड़ रहती है। समझाओ तो समझती नहीं। रामप्यारी से कहती हूँ 'देख! थोड़े बच्चे अच्छे होते हैं। ढेर बच्चों के लिए नाज कहाँ से आएगा?' पर यह समझती है मैं यों ही इसे बहका रही हूँ। कहती है 'मेम साब! नाज की कमी थोड़े ही है वह तो सरकार नहीं देती। 'अच्छा बाबा जनो हर साल बच्चे, सबकी जिन्दगी बरबाद करो। मेरा क्या, मैं दूसरा धोबी रख कपड़े धुलवा लूँगी। पर यों एक समस्या खत्म नहीं होती, दूसरी शुरू हो जाती है। लगता है ऐसे ही खिचपिच करते जिन्दगी बीत जाएगी।

17

गृहिणी की डायरी के कुछ पृष्ठ

(तृतीय)

1 फरवरी

जाडे के दिन कितनी जल्दी बीतते है। सुबह उठते-उठते 8 बज जाते हैं और चाय नाश्ता करते तो लगता है आधा दिन बीतने आया। कितने दिनो से अनु का स्वेटर बुनने के लिए पडा है। रोज इसे पूरा करने के विचार से बुनने बैठती हूँ पर कोई न कोई काम ऐसा आ जाता है कि इसे पूरा करने की नौबत ही नही आती। जाडो मे नए स्वेटर की माँग आजकल कितनी बढ गई है। हर रग के हर फैशन के स्वेटर अब छोटे बडे सबको चाहिए। हमारे जमाने मे एक स्वेटर होता था उसी से कई जाडे निकल जाते थे किन्तु अब हर वर्ष नए डिजायन और नए रग के फैशन बदलते हैं अत स्वेटर भी वैसे होने चाहिए। सोचा था घर मे फुर्सत नही मिलती, कॉलेज के खाली घण्टो मे बैठ कर बुनूँगी। किन्तु आज जो बातचीत वहाँ चली, उससे सारे उत्साह पर जैसे पानी फिर गया है। हमारे विभाग के मि शर्मा हम मे से कई लोगो को एक साथ बुनाई करते देख कर कहने लगे "यह कॉलेज है या सिलाई बुनाई सेन्टर, जिसे देखो वह ऊन लिए बुन रहा है। औरतें चाहे जितनी पढ लिख जाएँ, चाहे कितने ही ऊँचे पद पर पहुँच जाएँ, उन्हे घर गृहस्थी की, साडी कपडो की बातो मे ज्यादा आनन्द आता है। जब दो औरतें मिलकर बैठती है तो साडी-कपडा और जेवर की बात जरूर करती हैं।"

मेरे मस्तिष्क मे आज सारे दिन मि शर्मा की कही बात घूमती रही। जब पुरुष इस तरह की बातें करते है तो आक्रोश की एक लहर मेरे अन्दर दौड जाती है। आखिर पुरुष क्या चाहते है? नौकरी करने वाली नारी क्या नारी नही है? नौकरी के साथ क्या वह नारी होना छोड दे, न वह बच्चे पैदा करे, न उनका लालन पालन करे और न घर गृहस्थी सम्भाले, खाली अपनी नौकरी से वास्ता रखे और सब कुछ भूल जाए। स्त्री जहाँ कार्यशीला है वही किसी की पत्नी, किसी की माँ व गृहिणी भी तो है। बाहर के कार्यो के साथ गृहस्थ जीवन के उत्तरदायित्व भी तो उसके आँचल से बँधे है। वह उन्हे काट कर कैसे फेंक दे? एक ओर पुरुष वर्ग

चाहता है कि नौकरी के साथ नारी घर के कामों में भी कुशल हो तथा घर का पूरा उत्तरदायित्व सम्हाले, दूसरी ओर वह चाहता है कि वह घर के बाहर घर की, बच्चों की, सिलाई, बुनाई, और साड़ी की बात भी न करे, यह कैसे सम्भव है? कला और संस्कृति आज नारी के बल पर ही जीवित है। यदि पुरुषत्व की झोंक में वह नृत्य और गान से, सिलाई और बुनाई से, खाना पकाने की कला से मुँह मोड़ लेगी तो जीवन में फिर कौनसी रम्यता और आकर्षण शेष रह जाएगा। यदि पुरुषों ने नौकरी के नाम पर उसकी प्रकृति में व्याघात करने की चेष्टा की तो तकलीफ उन्हीं को उठानी पड़ेगी। फिर ऑफिस से लौटकर वह चाय बनाने की बजाय अखबार पढ़ेगी और रोते बच्चों को चुप करने के बजाय सिनेमा जाने की तैयारी करेगी। यदि परिस्थितिवश नारी ने घर की चार दिवारी से बाहर निकल, आर्थिक क्षेत्र में पुरुष का हाथ बँटाना शुरू किया तो इसका मतलब यह तो नहीं कि वह भी पुरुषों की भाँति क्लब-लाइफ बिताए, सिगरेट फूँके या राजनीति की कोरी बहसों में भाग लेकर अपने जीवन को धन्य समझे। आर्थिक क्षेत्र में सक्रिय सहयोग देने के साथ यदि नारी नाच-गान में रुचि लेती है, साड़ी और घर गृहस्थी की बात करना भी पसन्द करती है तो पुरुष जाति का उपकार ही करती है। भारतवर्ष में घर आज भी घर है केवल यहाँ की नारी के बल पर। कार्यशीला होने के साथ पत्नीत्व और मातृत्व के उत्तरदायित्व को भूल कर जिस दिन गृहिणी केवल नौकरी पेशा नारी बन जाएगी, तब पुरुषों की सहनशक्ति उनका साथ छोड़ देगी। घर होटल बन जाएँगे। साड़ी की चर्चा क्या पाप है? यदि घर में रोटी पकाने की आशा उससे की जाती है तो साड़ी या सिलाई बुनाई की बात से इतनी नाराजगी क्यों? मन ही मन आज पुरुषों के प्रति प्रतिक्रिया के भाव इतने तीव्र हो गए हैं कि घर आकर भी मूड नहीं सुधरा और बिना बात बच्चों के पापा से भड़क हो गई।

4 फरवरी

आज सुबह से बहुत ही तेज सर्दी है। हाथ पाँव ठिठुरे जा रहे हैं। सुबह आठ बजे क्लास पढ़ाने जाना है। घर में सबसे कह दिया है कि नाश्ता अपने आप कर लेना मुझे जल्दी है। पर सोचती हूँ कि बच्चे भी विचारे क्या सोचेंगे? घर में माँ के न रहने पर सब काम अस्त व्यस्त हो जाते हैं पर क्या करूँ विवशता है, जाना ही पड़ता है। दो दिन पहले की मिस शर्मा की कही बात ऐसी चुभी है कि चित्त से उतरती ही नहीं। लोग कैसे इतने कठोर हो जाते हैं। मुझे याद है कि हमारी एक सहयोगिनी बहिन कार्यशीला विवाहिता स्त्रियों को किसी प्रकार की सुविधा कॉलेज में देने के पक्ष में नहीं थीं। वे कहती थीं कि "विवाहित स्त्रियों को एक तो नौकरी ही नहीं करनी चाहिए, यदि वे नौकरी करती ही हैं तो उन्हें कोई सुविधा नहीं मिलनी चाहिए, कारण उनका ध्यान नौकरी में कम, बच्चों और घर में ज्यादा रहता है। अविवाहिता स्त्रियाँ जितना अच्छा काम कर सकती हैं, जितना अधिक समय बाहरी कार्यों में दे सकती हैं उतना विवाहिता नहीं, अतः इनसे जितना बन पड़े अधिक काम लेना चाहिए। विवाहिता कार्यशीला नारी के साथ हजार चक्कर रहते हैं।

आए दिन उनके बच्चे बीमार हैं, कभी पति बीमार हैं। कभी सास आई हैं, कभी किसी की शादी मे जाना है और कभी स्वय को तीन महीने की छुट्टी चाहिए क्योकि बच्चा होने वाला है। ऐसी स्थिति मे क्या यह उचित है कि उन्हे नौकरी मे कोई सुविधा दी जाए?" मैं इस विचारधारा से घृणा करती हूँ। दुहरे उत्तरदायित्व को निभाने वाली नारी मेरे विचार मे दुगुनी सहानुभूति की पात्र है। उसका एक ही भार इतना बडा है कि जीवन भर हल्का नही हो पाता, उस पर वह समय की आवश्यकता के अनुकूल बाहर के कामो मे भी सहयोग देती है, तब स्वभावत उसे विशेष सहानुभूति की आवश्यकता अनुभव होती है। कार्यशीला विवाहिता नारी के प्रति लोगो का उपेक्षा भाव या उनकी घर के प्रति निष्ठा से चिढने की आदत मे, मुझे ईर्ष्या तथा कुण्ठा की गन्ध आती है। वह समय भी कभी अवश्य आएगा जब खाली घर बैठने वाली स्त्रियाँ लोगो को भार लगने लगेंगी और कार्यशील स्त्रियाँ समाज मे अधिक सम्मान की दृष्टि से देखी जाएँगी।

15 फरवरी

कल बसन्त पचमी थी। हमारे कॉलेज मे कवि सम्मेलन का एक विशाल आयोजन था, मैं पूरी इच्छा होते हुए भी उसमे सम्मिलित नही हो सकी। आज सहयोगी बहिनो ने जब इसके बारे मे चर्चा की और कई सुन्दर कविताओ की प्रशसा की तो मुझे वस्तुत बडा दु ख हुआ। बसन्त पचमी को हमारे घर मे ही समारोह होता है। सरस्वती पूजन किया जाता है। आने वाली पीढी अपने देश की परम्पराओ से परिचित रहे इसलिए मैं यह आवश्यक समझती हूँ कि प्रत्येक त्योहार रुचि लेकर मनाया जाए। आधुनिक शिक्षा कुछ इस तरह की हो रही है कि लोगो को अपनी परम्पराओ मे न तो रुचि है और न उनकी विशेष जानकारी ही उन्हे है। पश्चिम की नकल मे कुछ लोग सब त्योहारो और पर्वों को रुढि और पिछडेपन की निशानी मानते है। कार्यशीला बहिनो के लिए इन्हे मनाना दिन प्रतिदिन दुष्कर होता जा रहा है। किन्तु मैं इन अवसरो को विशेष महत्त्व देती हूँ। बच्चे अपनी परम्पराओ को जाने, उनके सस्कार बनें इसलिए बहुत से आवश्यक काम छोड कर इन्हे मनाती हूँ। इसी सिलसिले मे, मैं कॉलेज के इस सुन्दर आयोजन म सम्मिलित नही हो सकी। कितने ऐसे अवसर आते है जब घर और बाहर के कामो मे सामजस्य बिठाना कठिन हो जाता है। दुहरे व्यक्तित्व की इन समस्याओ से जूझती आज की नारी इतने पर भी जब घर या बाहर अपनी कटु आलोचना सुनती है तो निश्चय ही मन वितृष्णा से भर जाता है। घर के लोग समझते हैं कि हमें घर की चिन्ता कम, बाहर की अधिक है और बाहर वाले उसे मात्र गृहिणी मान कर उसके कार्यो की प्रशसा नही करते। मेरे कई सम्बन्धी मुझसे मिलने इसलिए नही आते कि पता नही मैं उन्हे घर मिलूँ या नही मिलूँ? उनकी ऐसी धारणा से मुझे बडी पीडा होती है। बाहर काम करती हूँ तो क्या सारे दिन घर से बाहर रहती हूँ। अब तो ऐसी बातें सुनते-सुनते मन कुछ पक्का हो गया है शुरू मे मन को बड़ी ठेस लगती थी।

18 फरवरी

पिछले दो तीन दिन से कुछ पत्र-पत्रिकाओ मे विवाह और नौकरी पेशा नारी के सम्बन्ध मे चर्चा पढ रही हूँ। बहुत से लोग यह मानते हैं कि नौकरी पेशा पत्नी और पति मे विचार साम्य नही हो पाता। किसी न किसी बात पर तनाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। बात यह है कि जब स्त्री घर और बाहर दोनो क्षेत्रो मे समान रूप से कार्य करती है तब पति के उत्तरदायित्व पहले की अपेक्षा कही अधिक बढ गए हैं। किन्तु, उन्हें न मानकर बहुत से पति आज भी पत्नी को सदियो पुरानी मर्यादा मे बँधी देखना चाहते हैं और यही स्थिति तनाव का मूल कारण है। मेरा सौभाग्य है कि मुझे तनावपूर्ण स्थिति का सामना एक दिन भी नहीं करना पडा। पति के पूर्ण सहयोग से मुझे कभी यह अनुभव ही नही हुआ कि मैं दोहरा व्यक्तित्व ओढे हुए हूँ। मैं समझती हूँ कि कार्यशीला नारी को पति के सहयोग की पहले की अपेक्षा अधिक जरूरत है। विवाह सस्था का विरोध करने मे अथवा पति को भला बुरा कहने मे नारी मुक्ति मुझे सम्भव नहीं प्रतीत होती। घर के वातावरण को सुख शान्ति पूर्ण बनाने मे पति-पत्नी दोनो का सौहार्द्र और एक दूसरे को समझने की शक्ति से ही तनाव कम हो सकते हैं। एक दूसरे का विरोध करके नही। आज इतना ही—

18

त्याग और कर्त्तव्य की देवी वासवदत्ता

आज से लगभग दो हजार वर्ष पूर्व संस्कृत साहित्य मे भास नाम के एक प्रसिद्ध कवि एव नाटककार हुए हैं। इन्होने करीब तेरह नाटको की रचना की है जिनमे 'स्वप्नवासवदत्ता' उनका सर्वोत्तम एव लोकप्रिय नाटक है। सस्कृत मे कालिदास के अभिज्ञान-शाकुन्तल' की भाँति यह नाटक भी अत्यन्त जनप्रिय हुआ है। इस नाटक की प्रमुख नायिका वासवदत्ता का चरित्र शकुन्तला के समान ही मानव हृदय की कोमल एव उदार वृत्तियो को छूने मे समर्थ है। 'स्वप्नवासवदत्ता' का अनुवाद न केवल विभिन्न भारतीय भाषाओ मे ही हुआ है अपितु योरोप की कई भाषाओ मे भी हो चुका है। भारत की प्रसिद्ध नृत्यकार श्रीमती मृणालिनी साराभाई के निर्देशन मे अमेरिका के वाशिंगटन तथा न्यूयॉर्क नगरो मे अंग्रेजी भाषा मे उसका अभिनय किया गया था। इसके अभिनेता पूर्णतया अमेरिकी थे और वेशभूषा भारतीय थी। अमेरिकी रगमच पर प्रस्तुत इस भारतीय नाटक की वहाँ के दर्शको ने मुक्तकठ से प्रशसा की है।

'स्वप्नवासवदत्ता' नाटक मे महाराज उदयन और वासवदत्ता की प्रेम कहानी वर्णित है। महाराज उदयन एक ऐतिहासिक व्यक्ति हैं और वासवदत्ता उसकी रानी है। इन दोनो की प्रेम कथा सदियो से भारत मे प्रसिद्ध रही है। नाटककार भास ने उसी कथा को बड़े मनोवैज्ञानिक एव मार्मिक रूप मे प्रस्तुत किया है। कौशाम्बी के राजा उदयन बहुत रूपवान गुणवान और कुलीन थे। उन्ही के समकालीन उज्जैन के राजा प्रद्योत की कन्या वासवदत्ता अपने समय की अपूर्व सुन्दरी तथा गुणवती थी। प्रद्योत वासवदत्ता का विवाह उदयन से करना चाहते थे, किन्तु उदयन की कुलीनता देखकर इस विषय में कुछ कहने का साहस उन्हें नही होता था। अपनी इच्छा पूरी करने के लिए प्रद्योत ने एक षडयन्त्र रचा। वे धोखे मे उदयन को कैद करके उज्जयिनी ले आए और वासवदत्ता मे उनका प्रणय सम्बन्ध करा दिया। उदयन वासवदत्ता को लेकर कैद मे भागे और कौशाम्बी आ गए। वासवदत्ता राजमहिषी बन गईं।

उदयन और वासवदत्ता एक दूसरे को पाकर आत्मविभोर हो गए। दोनों कला पारखी थे, स्वय कलाकार थे, अत दिन रात उसी में व्यस्त रहते थे। राज्य

कार्य का उन्हें होश ही न रहा। उचित अवसर पाकर आरुणि नामक शत्रु ने कौशाम्बी पर आक्रमण किया। उदयन पराजित होकर कौशाम्बी से हाथ धो बैठे और लावाणक स्थान पर रहने लगे। यहीं से वासवदत्ता के जीवन की करुण एवं वेदनामयी गाथा शुरू होती है।

उदयन के महामन्त्री यौगन्धरायण को किसी सिद्ध ने बताया था कि जब उदयन का विवाह मगध की राजकुमारी पद्मावती से होगा तभी तुम्हारे राज्य का सकट दूर होगा। वासवदत्ता के रहते उदयन के दूसरे विवाह की बात तो क्या, कल्पना भी बडी कठिन थी। उदयन और वासवदत्ता छायायी की भाँति साथ रहते थे। एक पल के लिए भी उनका विछोह कठिन था, किन्तु महामन्त्री यौगन्धरायण बडे कूटनीतिज्ञ थे। वे जानते थे कि देवी वासवदत्ता अपने पति की मगलकामना के लिए सब कुछ त्यागने के लिए तैयार हो सकती है। अत उन्होंने अपना मंतव्य वासवदत्ता से निवेदन किया। वासवदत्ता जैसी परम साध्वी नारी से उन्हें जिस उत्तर की आशा थी वैसा ही उत्तर मिला। वासवदत्ता ने कहा कि मैं अपने पति की सुख समृद्धि तथा राज्य की प्राप्ति के लिए अपने प्राणों की बलि देने के लिए भी उद्यत हूँ।

यौगन्धरायण ने तुरन्त वेश बदला और वासवदत्ता को उदयन से छिपाकर मगध की राजकुमारी पद्मावती के पास ले गए। पद्मावती से उन्होंने निवेदन किया कि यह मेरी छोटी बहिन अवन्तिका है। इसका पति कुछ दिनों के लिए परदेश गया है तब तक के लिए मैं इसे आपके सरक्षण मे छोडना चाहता हूँ। पद्मावती ने वासवदत्ता के रूप सौन्दर्य से आकर्षित हो उसे सखी बनाकर अपने पास रखना सहर्ष स्वीकार कर लिया। यौगन्धरायण का काम सिद्ध हो गया, किन्तु वासवदत्ता पर जो बीती वह नारी हृदय की सहनशक्ति और त्याग का अपूर्व उदाहरण है। पद्मावती के पास रहकर वासवदत्ता ने अपना व्यक्तित्व ही मिटा दिया। वह पद्मावती की प्रसन्नता के लिए हर तरह के कार्य करने को प्रस्तुत रहती थी। हृदय मे पति वियोग व्याप्त था किन्तु कर्त्तव्य की बलिवेदी पर उसने सब कुछ न्यौछावर कर दिया।

पति वियोग की अगाध व्यथा सहन करके वासवदत्ता पद्मावती के साथ खेलती मुस्कराती थी। पद्मावती को वीणा सिखाते समय उसके हृदय मे पूर्व स्मृतियो की आँधी सी उमड पडती थी, पर वह मुँह से आह तक नही कर पाती थी। कर्त्तव्य की कठोर शृंखला मे बँधकर उसके सारे अरमान चूर-चूर हो रहे थे, पर वह चुप थी। इस भारी व्यथा को सहन कर जीवित रहने का एक ही आधार वासवदत्ता के पास था और वह यह कि उदयन उसे मरी हुई मानने के बाद भी उतना ही प्यार करते हैं। वे उसके वियोग में बहुत दुखी हैं। पति का अनन्य प्रेम नारी जीवन की सबसे बडी साध है। वही वासवदत्ता को प्राप्त था। किन्तु एक दिन जब उसने सुना कि पद्मावती का विवाह उदयन से तय हो गया है तो उसके पैरो तले की भूमि खिसक गई। वह सहम कर बोल पडी 'हाय यह तो बडा अन्याय हुआ।' धाय ने पूछा—इसमें क्या अन्याय है ? वासवदत्ता अनजाने मे निकली बात की भूल अनुभव

करती सभल कर बोली 'कुछ नही' राजा दूसरे विवाह के लिए इतनी जल्दी तैयार हो गया यही अन्याय है, इसके बाद वासवदत्ता के हृदय मे यह जानने की बडी लालसा थी कि क्या राजा ने स्वय पद्मावती से विवाह करने की इच्छा प्रकट की है ? जब उसे मालूम हुआ कि मगधराज ने उन्हे इस विवाह के लिए विवश किया है तो उसने सन्तोष और शान्ति की साँस ली । दूसरा विवाह तो हो ही रहा है किन्तु उदयन स्वय अपनी इच्छा से यह विवाह नही कर रहे, वासवदत्ता इस भावना मात्र से सन्तुष्ट है । भास ने नारी हृदय का कितना मर्मस्पर्शी स्वरूप चित्रित किया है । क्या कोई पुरुष हृदय व्यथा के इतने भार को वहन करके इस भावना भर से सन्तुष्ट हो सकता है । शायद नही ?

वासवदत्ता की आँखो के सामने उदयन का विवाह पद्मावती से हो गया । उसके पति दूसरे के हो गए किन्तु यौगन्धरायण के आदेश मे छिपी पति की मगलकामना और देशोद्धार के महान् उद्देश्य की सिद्धि मे उसके ओठ सदा बन्द रहे । वह तिल-तिल जलकर पद्मावती के सौभाग्य की सराहना करती रही ।

वासवदत्ता के जीवन नाटक का यह करुण एव सवेदना पूर्ण अक यही समाप्त नही होता अभी उसे कडे अभिनय की परीक्षा देनी शेष है । एक दिन महाराज उदयन पद्मावती के महल मे गए । वहाँ पद्मावती को न पाकर उसके पलग पर मुँह ढककर लेट गए । लेटते ही कुछ देर मे उन्हे नीद आ गई । वासवदत्ता पद्मावती के सिर दर्द का समाचार सुनकर उनकी तबियत पूछने महल में गई । जब उदयन स्वप्न मे वासवदत्ता का नाम लेकर कुछ बडबडाने लगे तब वासवदत्ता एक दम चौंक पडी । उसे भय हुआ कि कही राजा ने मुझे देख तो नही लिया है । यदि ऐसा हुआ तो मेरी सारी साधना निष्फल हो जाएगी । यौगन्धरायण का स्वप्न पूरा नहीं हो सकेगा । इस समय वासवदत्ता के हृदय मे मचते हुए अन्तर्द्वन्द की कल्पना कीजिए । एक ओर उसके जीवन सर्वस्व प्रियतम उसके अत्यन्त निकट हैं, वह कुछ क्षण उनके समीप रहकर अपनी व्यथा भूलना चाहती है, दूसरी ओर यौगन्धरायण का भय उसे तर्जनी दिखाकर उदयन से शीघ्र दूर भागने का आदेश दे रहा है । वासवदत्ता क्या करे ? वह कर्त्तव्य और भावना में कर्तव्य को महान् समझ कर वहाँ से चली गई । पलंग से नीचे लटकते राजा के हाथ को उठाकर पलग पर रख गई । वासवदत्ता के स्पर्श से राजा नीद से चौंक कर जाग उठे । वे वासवदत्ता को पुकारते हुए दौडे । किन्तु अँधेरे मे दीवार से टकराकर गिर पडे । उन्हे विश्वास हो गया कि वासवदत्ता जीवित है । किन्तु उनके साथी वसतक ने इस घटना को मात्र स्वप्न की सज्ञा देकर उनका विश्वास उखाड दिया ।

शनै शनै स्थिति मे परिवर्तन हुआ । देवी वासवदत्ता के भाग्योदय का समय निकट आया । आरुणि का समूल विनाश हो गया और शत्रुओ द्वारा छीना गया उनका राज्य फिर लौटा लिया गया । महाराज उदयन सब कुछ प्राप्त होने पर भी वासवदत्ता के वियोग में उद्विग्न थे । वे रह रह कर उसकी याद करते थे । तभी

यौगन्धरायण पद्मावती के पास धरोहर रूप मे रखी अपनी बहिन को लेने आ पहुँचे। उनका प्रण और वासवदत्ता का परीक्षा काल समाप्त हो चुका था अत यौगन्धरायण ने राजा के समक्ष सारा रहस्य स्पष्ट कर दिया। पद्मावती वासवदत्ता का असली रूप जानकर बडी लज्जित हुई, उसने वासवदत्ता के चरण छूकर क्षमा मांगी।

उदयन वासवदत्ता की इस कथा मे वासवदत्ता का चरित्र परम उज्ज्वल और त्यागमय है। वासवदत्ता जितनी सुन्दर और गुणवती थी हृदय भी उसका उतना ही कोमल, दयालु और उदार था। वह अपनी कला को केवल मनोरजन या विलासिता का साधन नही समझती थी। उसके लिए कला योग और भोग दोनो की प्राप्ति का साधन थी। उसके गुणो ने महाराज उदयन को इतना आकर्षित किया था कि वे उसके वियोग मे सदा तडपते रहे। पद्मावती भी उनके हृदय मे वह स्थान न पा सकी।

वासवदत्ता के आने से कौशाम्बी एक कलापूर्ण नगरी बन गई थी। वह चित्रकला और सगीतकला मे परम प्रवीण थी अत अन्त पुर उसके चित्रो और सगीत से हर समय परिपूर्ण रहता था। इसके अतिरिक्त वासवदत्ता काव्य, नाटक आदि द्वारा भी सखियो के साथ मनोविनोद करती रहती थी। इस भांति वासवदत्ता का चरित्र नारी के समस्त गुणो से परिपूर्ण एक आदर्श चरित्र है।

19

नए युग के नए मूल्य–पातिव्रत्य

पतिव्रत धर्म की हिन्दू समाज मे क्या प्रतिष्ठा थी और भारतीय नारी ने किस निष्ठा एव आस्था से उसका पालन किया आज की नई पीढी विशेषत स्वतन्त्रता के बाद जन्मी पीढी, सहज रूप मे इसकी कल्पना नही कर सकती । पतिव्रत धर्म की रक्षा के लिए या पति की प्रसन्नता के लिए सर्वस्व अर्पण करने वाली सीता, सावित्री, दमयन्ती, पार्वती, गांधारी और पद्मिनी जैसी नारियो की कथाएँ इतिहास की अमर गाथाएँ है । किन्तु बुद्धि और तर्क प्रधान युग के आधुनिक व्यक्ति के लिए ये कथाएँ परी लोक की अद्भुत कथाओ से अधिक महत्त्व नही रखती । गांधारी जीवन भर आँखो पर पट्टी बाँधे रही क्योकि उसके पति धृतराष्ट्र अधे थे । सावित्री ने अपनी अनन्य पति भक्ति से मृत सत्यवान को पुनर्जीवित कर लिया । निरपराधिनी सीता को अग्नि की साक्षी देने के उपरान्त भी राम ने एक सामान्य धोबी के कहने से सदा के लिए निर्वासित कर दिया और सीता ने पति की प्रसन्नता के लिए सब कुछ मूक होकर सहा । इस प्रकार की घटनाएँ आज पतिव्रत धर्म के प्रति श्रद्धा उत्पन्न करने की अपेक्षा आलोचना प्रत्यालोचना का विषय अधिक बन गई है । पतिव्रत धर्म या पतिव्रता स्त्रियो की जितनी अधिक प्रशसा की जाती है आधुनिक विचारशील व्यक्ति को उसमे पुरुषो की एकांगी समाज व्यवस्था की अथवा नारी के प्रति उसके अत्याचार की उतनी ही गध आती है । आज ऐसा समझा जाने लगा है कि पतिव्रत धर्म पुरुषो के मनमाने अत्याचार और अनाचार का ही एक प्रच्छन्न रूप है ।

प्राचीन हिन्दू-शास्त्रो एव महाकाव्यो मे पतिव्रत की बडी महिमा रही है । मनुस्मृति नारी को पति के अनुकूल रहने की आज्ञा देती है चाहे वह कुमार्गी, मद्याचारी और दुराचारी ही क्यो न हो । इसके अनुसार पति शीलरहित, परस्त्रीगामी तथा विद्या विहीन क्यो न हो स्त्री का धर्म है कि पति को देवता के समान आदर दे । पति की सेवा से स्त्री स्वर्ग लोक की अधिकारिणी हो जाती है । पति की मृत्यु के उपरान्त भी पत्नी को पति भक्ति करने का आदेश दिया गया है । शास्त्रो के अनुसार पतिव्रत का तात्पर्य तन, मन, वचन से पति के प्रति एक निष्ठ होना है । महर्षि वाल्मीकि ने रामायण मे कहा है 'पतिरेका गति नार्या' अर्थात् पति ही पत्नी की एक मात्र

शरण है—उसके बिना वह जीवित नहीं रह सकती । जैसे बिना तार के वीणा नहीं बज सकती, जैसे बिना पहिए के रथ नहीं चल सकता वैसे ही पति बिना स्त्री को सुख नहीं मिल सकता । पत्नी के लिए उसका पति ही देवता, गुरु, गति, मित्र, धर्म प्रभु और सर्वस्व है । अत. उसकी सब प्रकार से भक्ति करना पत्नी का एक मात्र कर्त्तव्य है । जो नारी अपने पति की सेवा नहीं करती उसे पापियों की गति प्राप्त होती है ।

भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना के बाद इस धर्म का और अधिक विस्तार कर दिया गया । इस समय हिन्दू धर्म की रक्षा एवं स्त्रियों के सतीत्व तथा रक्त की शुद्धता बनाए रखने के लिए पतिव्रत धर्म के नियम और भी कठोर बना दिए गए । घर से बाहर न निकलना, पर पुरुष की छाया से भी दूर रहना, पति के साथ सती होना या आजन्म वैधव्य की कठोर अग्नि में जलना छोटे, बड़े रूप में पतिव्रत धर्म के ही आदर्श बन गए । सब मिलाकर इस धर्म ने नारी की उन्नति एवं सुख के सब मार्ग बन्द कर दिए । अशिक्षिता एवं पति पर पूर्ण रूप से निर्भर होकर नारी स्वयं इन आदर्शों का कट्टरता से पालन करने लगी । सदियों तक स्त्रियों ने पतिव्रत का यथाशक्ति पालन किया और उस पर अटूट श्रद्धा रखी । काव्य और इतिहास में ऐसी अनेक नारियों के उदाहरण मिलते हैं जिन्होंने पतिव्रत निभाने के लिए अपने प्राणों की बाजी लगादी । राजपूत रमणियों के जौहर व्रत से कौन अपरिचित है ? कितनी ही स्त्रियों ने अपने प्राण केवल इसलिए दे दिए कि उनका शरीर पर पुरुष के स्पर्श से अपवित्र हो गया था । एक सती नारी ने अपना हाथ ही काट कर फेंक दिया था क्योंकि किसी दूसरे पुरुष ने उसके हाथ का स्पर्श कर लिया था । बीसवीं शताब्दी के इस वैज्ञानिक एवं परिवर्तित युग में भी ऐसी स्त्रियों और पुरुषों की संख्या कम नहीं है जिन्हें पुरातन पातिव्रत्य पर पूर्ण आस्था एवं विश्वास है । किन्तु यह वर्ग अब धीरे-धीरे समाप्त हो रहा है । वर्तमान समाज व्यवस्था में नारी को पूर्णतः घर के अन्दर बन्द करके नहीं रखा जा सकता । शिक्षा के द्वार स्त्री और पुरुष के लिए समान रूप से खुल जाने के कारण पुरातन आदर्श और मान्यताओं की आस्था धीरे-धीरे समाप्त हो रही है । आज मनुष्य की प्रवृत्ति विश्वास का नहीं, तर्क का आधार लेकर चलना चाहती है । वह उन व्यवस्थाओं का मूल्य जानना चाहती है—जिन पर आज तक किसी ने उंगली उठाने का प्रयास नहीं किया । शिक्षिता स्त्री अब पुरुष की कृपा पर जीवित रहने के लिए तैयार नहीं है अत पुराने पतिव्रत धर्म में उसकी कोई आस्था नहीं है । जो नारी जीविका के लिए दफ्तरों, कारखानों, होटलों और दुकानों में कार्य करेगी अथवा कुर्सी पर बैठकर सैकड़ों पुरुषों को आदेश देगी वह उनकी छाया से या स्पर्श से दूर रहने का व्रत कैसे निभाएगी ? आधुनिक युग में सतीत्व की परिभाषा बदल गई है । अब शरीर की पवित्रता की अपेक्षा मन की पवित्रता को अधिक महत्त्व दिया जाने लगा है ।

'मन में होते मनुज कलंकित
रज की देह सदा से कलुषित ।'

ऐसी स्थिति मे शारीरिक सम्बन्धो की पवित्रता जो पतिव्रत धर्म की एक मुख्य शर्त थी आज के युग मे अधिक महत्त्व नही रखती। सविधान मे हिन्दू स्त्री को भी विवाह विच्छेद करने का अधिकार मिल जाने से पुरातन पातिव्रत्य की शृ खलाये ढीली हो गई हैं। विपरीत परिस्थिति मे भी पति के अनुकूल आचरणकरना अब नारी जीवन की अनिवार्यता नही रही। मनु की समाज की व्यवस्था को चुनौती देती हुई आधुनिक स्वतन्त्र नारी कहने लगी है—

नर से स्वतन्त्र मेरी सत्ता मत कहो मुझे अबला नारी
घर की चहर दिवारी मे बन्धन के दिन अब बीत गए
पुरुषो की पशुता के कठोर शासन के दिन अब बीत गए
प्राणो की बलि दे चुकी बहुत, पति के चरणो की वेदी पर
पद रज पूजन और आराधन चिन्तन के दिन अब बीत गए
ऊँचे आदर्शो का जादू अब व्यर्थ चलाओ मत मुझ पर
मै नही सहनशीला सीता, मै हूँ विप्लव की चिन्गारी।

आधुनिक वैज्ञानिक साधनो ने, मनोविश्लेषण एव मनोविज्ञान के अध्ययन ने, पाश्चात्य सभ्यता एव सस्कृति ने सम्पर्क ने पातिव्रत्य की पुरातन धारणाओ को मूलत बदल दिया है। अब पति पत्नी सच्चे अर्थों मे एक दूसरे के सहयोगी हो सकते हैं, आश्रित और अन्नदाता नही। पति के कार्यों मे सहयोग देना पत्नी का धर्म है—किन्तु उसकी सेवा पूजा और चरणों की दासी बनने का, उसके प्रति अनन्य निष्ठा निभाने का आदर्श समाप्त हो गया है। पति को देवता मानने की स्थिति आज नही रही। अत पातिव्रत्य का पुराना आदर्श भी बदल गया है। बाहरी दुनिया मे सक्रिय सहयोग देने के साथ पतिव्रत के परम्परागत मूल्यो को निभाना अब सम्भव नही है।

20

आधुनिकता ने क्या खोया क्या पाया

आधुनिकता ने क्या खोया क्या पाया यह एक गम्भीर और जटिल प्रश्न है। जटिल इसलिए है कि आधुनिकता की कोई ऐसी कसौटी या परिभाषा हमारे पास नही है जिसके अनुसार खोने और पाने की प्रक्रिया का सही उत्तर दिया जा सके। आधुनिकता के नाम पर इतने भिन्न प्रकार की विचारधाराएं एव सामाजिक व्यवस्थाएं प्रचलित हैं कि उनमे से किसी को अच्छा और किसी को बुरा कहना देवताओं द्वारा किए गए समुद्र मन्थन से कम कठिन और जटिल उत्तरदायित्व नही है। इसमें अमृत और विष समान रूप से विद्यमान है प्रश्न उसके समुचित उपयोग का है। कुछ लोग शिव की तरह विष को भी अमृत बना लेते हैं और कुछ राक्षस अमृत को भी विष बनाकर न केवल अपना अपितु देश और समाज का वातावरण विषमय बना देते हैं।

शाब्दिक अर्थ मे आधुनिकता पुरातनता का प्रतिलोम शब्द है। जो कुछ पुराना है, परम्परागत है शाब्दिक रूप में वह आधुनिक नही है। बहुत से लोग इसी अर्थ मे प्रत्येक नवीन स्थिति को चाहे वह वेशभूषा की हो, खान-पान की हो, रीति-रिवाज की हो आधुनिक मानकर पुरानी से घृणा करते है। उन्हे अपनी परम्पराएं, अपनी सस्कृति नए की तुलना मे बहुत घिसी पिटी और सडी मालूम होती हैं। नवीनता की अन्धी दौड मे ऐसे लोग आधुनिकता को बदनाम करते हैं।

आधुनिकता का दूसरा अर्थ विचारगत वह नवीनता है जो युग के अनुकूल जीवन को नया मोड देती है, जीवन के नए मूल्य बनाती है तथा जो कुछ अनुपयोगी और देशकाल के विपरीत है उसमे विवेकपूर्वक परिवर्तन लाती हैं। पुराने फैशन के कपडे पहन कर और परम्परागत मूल्यों को अपना कर भी मनुष्य आधुनिक हो सकता है और लम्बे बाल, छोटी दाढी तथा न्यूकट के कपडे पहने नए युग के लडके विचारो में ऐसे पुराने और दकियानूसी हो सकते हैं जिन्हें अपनी पत्नी का किसी दूसरे पुरुष से बात करना या नौकरी के लिए घर से बाहर जाना या अकेली घूमना पसन्द न हो।

जहाँ तक विचारगत एव भौतिक मूल्यो की बात है आधुनिकता से हमने बहुत कुछ पाया है। मानव मात्र की समानता, विचारो की उदारता, आत्मनिर्भरता तथा शारीरिक सुख सम्पदा की बहुलता आधुनिकता की सबसे बडी देन हैं। छोटे-बडे, ऊँच-नीच, नर-नारी, बेटा-बेटी की असमानता का आधुनिकता मे कोई स्थान नही है। मनुष्य-मनुष्य मे भेद करने वाली दृष्टि बहुत पुरानी और पिछडी माने जाने लगी है। बेटे के जन्म पर माँ का एक इच बढ जाना और बेटी के जन्म पर पिता की पगडी नीची हो जाने की कहावत अब हास्यास्पद बन गई है। जो भौतिक सुख राजा महाराजाओ एव बडे-बडे धनी मानी व्यक्तियो को ही उपलब्ध थे आधुनिक युग का सामान्य व्यक्ति भी उन्हे आसानी से भोग रहा है। उच्चकोटि का सगीत एव नृत्य केवल राजदरबारो की वस्तु समझे जाते थे किन्तु सिनेमा एव रेडियो के आधुनिक माध्यम से वे सर्वसुलभ हो गए हैं। महिलाओ की दृष्टि से देखें तो आधुनिक नारी विगत युग की नारी से सर्वथा भिन्न स्वतन्त्र व्यक्तित्व वाली आत्म निर्भर नारी है, उसे जीवन के किसी क्षेत्र मे परमुखापेक्षी नही होना पडता। नारी की आर्थिक निर्भरता व स्वतन्त्रता ने विवाह की विवशता को समाप्त कर दिया है। एक युग था जब बधी गठरी की तरह किसी अनजाने पुरुष के हाथो वह पत्नी के रूप मे सौंप दी जाती थी। जो दे दिया वह खा लिया, जो कह दिया वह मान लिया, जो पहना दिया वह पहन लिया, उसकी अपनी इच्छा का जीवन मे कही कोई स्थान नही था। शादी के बरसो बाद तक 'ब्याहुली' कहलाकर दिखावे की गुडिया सी बनी रहती थी।

आधुनिकता ने इन सब प्रथाओ का अन्त कर दिया है। अब नारी इच्छा से विवाह करती है और इच्छा से उसे तोडने का अधिकार रखती है। शिक्षा एव व्यवसाय के प्रत्येक क्षेत्र उसके लिए समान रूप से खुले हैं। वेशभूषा मे स्त्री पुरुषो की भिन्नता समाप्त हो रही है। आधुनिक वेशभूषा मे यह पहचानना कठिन हो गया है कि कौन महिला है और कौन पुरुष? अपनी विदेश यात्रा के दौरान हवाई जहाज मे अपने पास बैठे व्यक्ति को मैं बराबर महिला समझती रही। परिचय के बाद मालूम हुआ कि वे पुरुष है न कि महिला। घर, परिवार एव बच्चो के उत्तरदायित्व का भार भी अब उसके व्यक्तित्व के निखार एव आत्म-निर्भरता मे बाधा नही डालता। कहने का तात्पर्य यह कि भौतिक सुखो एव आत्म-निर्भरता मे आधुनिक घर-परिवारो ने बहुत कुछ पाया है।

किन्तु आधुनिकता का यह एक पक्ष है। इसका दूसरा पक्ष वह है जिसमे सब कुछ पाकर भी आधुनिक व्यक्ति या आधुनिक परिवार अपने आप मे अशान्त एव असन्तुष्ट दिखाई देते हैं। ऊपरी तामझाम तो बहुत आकर्षक है किन्तु अन्तर कही बहुत सूना और एकाकी है। आधुनिक मशीनी सभ्यता मे मनुष्य मशीनो की भाँति प्राणहीन और भाव शून्य हो गया है। पश्चिमी देश आधुनिकता के परम आदर्श माने जाते है किन्तु उन देशो के परिवारो और स्त्रियो को देखकर जो अनुभव मुझे हुआ उससे यह कहने मे मुझे तनिक भी सकोच नही है कि वस्त्र, भोजन और जीने की सुविधाएं जुटाने की अन्धी दौड मे न वहाँ परिवार की कोई परिभाषा है और न

पारम्परिक मानवीय सम्बन्धो की कोई ग्रास्था है। बारह, तेरह वर्ष की आयु मे बच्चे माता-पिता को छोड अलग घर बसा लेते हैं। माता-पिता को अपने बडे बच्चे भार प्रतीत होते हैं। पति-पत्नी के पारस्परिक सम्बन्ध शारीरिक अधिक, भावनात्मक कम है। पत्नी अपनी जीविका के लिए स्वय उत्तरदायी है अत सुबह से शाम तक कोल्हू के बैल की तरह काम मे जुटी रहती है। किसी को किसी से न बात करने की फुर्सत है और न किसी का दुख दर्द जानने की। वैयक्तिक आधुनिक मूल्यो ने पश्चिमी देशो की मानवीयता पर प्रश्न चिह्न लगा दिया है। एक बिल्डिंग मे वर्षों साथ रहने वाले व्यक्ति एक दूसरे की शक्ल नही पहचानते।

यही स्थिति हमारे देश के परिवारो और व्यक्तियो को प्रभावित कर रही है। माना कि सयुक्त परिवार आधुनिक व्यवस्था मे सम्भव नही है किन्तु पति-पत्नी और उनके बच्चे भी आजकल परिवार की सज्ञा मे नही आते। बच्चे स्वतन्त्र हैं, माता-पिता के सत्कार की भावना उनके हृदय मे नही रही, पत्नी आत्म-निर्भर है पति से उसका भावनात्मक सम्बन्ध टूट रहा है। विवाह की सप्तपदी अब धार्मिक न रह कर शारीरिक आवश्यकता की प्रतीक बन गई है। जीवन मे पारस्परिक सम्बन्धो एव मानवीय भावनाओ का यदि कोई स्थान है और उससे आदमी को यदि कुछ सुख मिलता है तो आधुनिकता ने उसे बडी बेरहमी से छीन लिया है। नारी अब केवल नारी है माता, पत्नी, पुत्री, बहिन जैसे मधुर सम्बन्धो का ममत्व, स्नेह एव सत्कार उसने खो दिया है। प्रत्येक के जीवन मे एक तनाव, घुटन और सघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो गई है। व्यक्तित्व रूखा हो गया है, जीवन मशीन के पुर्जों की भाँति चलता तो है और बडी तेजगति से चलता है, किन्तु इस गति मे बडी खडखडाहट और कोलाहल है। अत्याधुनिक कहे जाने वाले देश इस खडखडाहट से परेशान हैं और पुन किन्ही नए मूल्यो की खोज मे भटक रहे हैं। वे उन देशो की ओर बडे सतृष्ण नेत्रो से देख रहे हैं जिनमे मनुष्य-मनुष्य मे आत्मीयता एव मानवीयता के पुराने जीवन मूल्यो का महत्वपूर्ण स्थान है।

21

नारी का बदलता परिवेश और दाम्पत्य

बीसवी शताब्दी के परिवर्तित जीवन मूल्यो और नारी के बदलते परिवेश मे दाम्पत्य जीवन एक विचित्र पहेली सा बन गया है। प्रारम्भ मे जब शिक्षित स्त्रियाँ गृह की सीमा तोडकर बाहर आईं और पुरुषो के समान जीविकोपार्जन करने लगी तो सर्वत्र एक विचारधारा यह फैली कि विवाह नारी जीवन की अनिवार्य आवश्यकता नही है। विवाह की आवश्यकता नारी के सरक्षण के लिए थी, अब जब वह स्वय पैरों पर खडा होना सीख गई है तो विवाह द्वारा पति के आश्रय और सरक्षण की उसे कोई आवश्यकता नही है, वह आजन्म अविवाहित रहकर स्वतन्त्र जीवन व्यतीत कर सकती है। पतिव्रत धर्म की शास्त्रोक्त व्याख्याओ एव मर्यादा की बेडियो ने विवाह के प्रति नव-शिक्षित महिलाओ को और अधिक उदासीन बना दिया। विवाह नारी जीवन का अभिशाप माना जाने लगा। अविवाहित जीवन आधुनिकता की निशानी बन गया और दाम्पत्य जीवन अविवेक और बन्धन का प्रतीक। पढी-लिखी महिलाओ का एक बहुत बडा वर्ग अविवाहित रह गया।

किन्तु यह स्थिति बहुत दिनो तक यथावत् न रह सकी। अविवाहित स्त्रियो की सामाजिक भूमिका कुछ इस प्रकार की रही कि वे न समाज मे विशेष सम्मान की पात्र बनी और न व्यक्तिगत जीवन मे उन्हें कोई विशेष सन्तोष और आनन्द की उपलब्धि हुई। अकेला असम्पृक्त जीवन उनके लिए दुर्वह हो गया। धीरे-धीरे विवाह पुन नवशिक्षिताओ एव कामकाजी महिलाओ के जीवन का मधुर आकर्षण बन गया। विवाह का विरोध बन्द हो गया। बडे शहरो की अति आधुनिक छात्राएँ तो बी ए के बाद पढाई छोड़ कर वैवाहिक जीवन को महत्त्व देने लगी हैं। ऊँची पढाई और अविवाहित जीवन किन्ही क्षेत्रो मे अब अति आधुनिकाओ को अधिक आकर्षित नही करता। वह बीते दिनो का और कुछ-कुछ पिछडेपन का द्योतक बन गया है। किन्तु अब विवाह सुखी पारिवारिक सम्बन्धो का प्रतीक न रहकर भौतिक आवश्यकताओ की अधिकाधिक पूर्ति के लिए एक उत्तम साधन माना जाने लगा है।

नारी के बदलते परिवेश ने पति-पत्नी सम्बन्धो की पवित्रता और मधुरता पर एक प्रश्न चिन्ह लगा दिया है। प्रति वर्ष हजारो विवाह होते हैं और बहो

धूमधाम से सम्पन्न होते हैं। शादी विवाह के मौसम मे लोगो की मेजे विवाह के निमन्त्रण पत्रो से भर जाती हैं। एक से एक नए आकर्षक डिजाइनो मे छपे इन निमन्त्रण-पत्रो से विवाह का हर्षोल्लास जैसे छलका पडता है। रोशनी और सजावट का सारा तामझाम विवाह के आनन्द का मूर्तिमान दृश्य उपस्थित कर देता है, किन्तु व्यावहारिक जीवन मे आधुनिक विवाहो का आनन्द वाह्य हर्षोल्लास के इन क्षणिक आवरणो की भाँति अस्थायी और क्षणिक होता जा रहा है। थोडे दिन साथ रहने के वाद पति पत्नी के आकर्षण का जादू उड जाता है और जीवन की विभीषिकाएँ शेप रह जाती हैं। तब विवाह एक वन्धन, एक गुलामी और न जाने क्या-क्या दिखाई देने लगता है। पत्नी को पति रूप पुरुष से घृणा होने लगती है। वह उसके वन्धन मे या पत्नी की सीमित मर्यादा मे नही रहना चाहती, और पुरुष को पढी लिखी स्वतन्त्र व्यक्तित्व वाली उस पत्नी से शिकायत होने लगती है जो घर की अपेक्षा वाहर के कार्यों मे अधिक रुचि लेती है। इस प्रकार नए वातावरण मे पति और पत्नी के मध्य तनाव की एक स्थिति उत्पन्न हो गई है जो आज के दाम्पत्य जीवन को सुखी और सफल नही होने देती।

नारी ने सोचा था कि उसकी सारी कठिनाई आर्थिक परतन्त्रता की है। अपने भरण-पोषण के लिए वह पुरुष पर निर्भर है अत उसे पुरुष की अर्द्धांगिनी या अनुगामिनी बन कर रहना पडता है। अपनी सब इच्छाएँ मारकर पति की इच्छा पर नाचना पडता है। पढ-लिखकर, ऊँची डिग्रियाँ लेकर वह अपने पैरो पर खडी होगी और पुरुष की दासता से या परिवार के उत्तरदायित्व से उसे मुक्ति मिल जाएगी। वह घर की सीमा से बाहर निकल कर पत्नी एव गृहस्वामिनी पदो की पुरातन परम्पराओं को तोडकर पुरुष की समकक्षता प्राप्त कर लेगी। घर की व्यवस्था में पति-पत्नी दोनो का समान उत्तरदायित्व होगा और उसका जीवन सुख, शान्ति एव सम्पन्नता से व्यतीत होगा। किन्तु समानता और अधिकारो की इस दौड मे नारी ने न केवल अपने जीवन को और अधिक दूभर बना लिया है अपितु घर और परिवार की सुखद स्थिति को पहले की अपेक्षा कही अधिक विषम बना दिया है। उसके समुचित स्नेह और देखरेख के अभाव में घर बिखर गए हैं और परिवार टूट गए हैं, वह स्वय कितनी टूटी है इसका अनुमान आज की नारी के रूखे व्यक्तित्व से होता है।

परिवार का अर्थ है नारी, घर का अर्थ है पत्नी और सुखी दाम्पत्य का अर्थ है एक ऐसे मधुर स्वभाव वाली सद्गृहिणी का सहयोग जो सब प्रकार की कठिनाई हँसते हुए झेलने मे समर्थ हो। प्राय देखा गया है कि आधुनिक पत्नी के उग्र स्वभाव ने, पति को बार-बार टोकने की प्रवृत्ति ने, उसकी शिक्षा और स्वतन्त्र सत्ता के अभिमान ने दाम्पत्य जीवन को विषतुल्य कडुवा बना दिया है। पुराने शास्त्रो मे बारबार इस बात पर जोर दिया गया है कि पति के प्रति निष्ठा पत्नी का पहला कर्त्तव्य है। निष्ठा का अर्थ किसी प्रकार की दासता नही अपितु इस प्रकार का व्यवहार है जिससे पति-पत्नी मे उग्रता और किसी प्रकार का तनाव और कटुता

न आने पाए। किन्तु आज के बदलते मूल्यो मे नारी को इस प्रकार की कोई स्थिति स्वीकार नही है। वह जीवन मे समन्वय लाने की अपेक्षा पति से पृथक् हो जाना अधिक पसन्द करती है। सहिष्णु होना आज की परिभाषा मे दब्बू होने की निशानी है। यही कारण है कि आज सफल दाम्पत्य एक स्वप्न सा प्रतीत होता है। नारी के पर्याप्त सहयोग और स्नेह के अभाव मे दाम्पत्य की न कोई परिभाषा है और न कोई अस्तित्व। वैवाहिक जीवन का सुन्दर भवन आज तक नारी के कन्धो पर टिका था। आज समानता और अस्तित्व की होड मे जब उसने अपने कन्धे ढीले कर दिए है तो वह भरभरा कर गिरता दिखाई देता है।

प्रश्न उठता है कि क्या सफल दाम्पत्य का अर्थ नारी की परतन्त्रता है? क्या नारी पहले की तरह घर की चार दीवारी मे बन्द होकर अपने स्वतन्त्र अस्तित्व की बलि दे दे, फिर से पति को देवता स्वीकार करके दासी का सा जीवन व्यतीत करे, दिन भर चूल्हा फूंके और तुलसीदास की ढोलगँवार की श्रेणी मे आकर ताडन की अधिकारी बने? उत्तर स्पष्ट है कि बीसवी शताब्दी के परिवर्तित परिवेश मे जाग्रत एव शिक्षित स्वतन्त्र नारी के लिए अब न यह सम्भव है और न इसकी अपेक्षा उससे की जाती है। सब चाहते है कि स्त्री विदुषी हो और अपने पैरो पर खडी होने की क्षमता रखती हो। किन्तु इसके साथ-साथ नारीत्व के गुणो से भी भरपूर हो। नारी होने के नाते उसके कोमल स्वभाव की, बच्चो के प्रति ममत्व की, पति तथा परिवार के अन्य सदस्यो के साथ मधुर व्यवहार की, घर की सुव्यवस्था की अपेक्षा उससे सदा की जाएगी। स्त्री की सफलता उसके नारीत्व मे है पुरुषो के गुणो का अनुकरण करने या उससे स्पर्द्धा करने मे नही। स्पर्द्धा से कभी प्यार नही होता। प्रकृति ने उसे जो गुण पुरुषो पर राज्य करने के लिए प्रदान किए है, बराबरी की होड मे उसे उनका त्याग नही करना चाहिए। सुखमय दाम्पत्य, उसके जीवन की सबसे बडी सफलता है। गृह स्वामिनी का पद, प्रिया का मधुर सबोधन, उसके सब पदो से अधिक गरिमामय और महत्वपूर्ण है। नि सदेह इसके लिए आज की नारी को अपनी दुहरी-भूमिका निभानी होगी, किन्तु व्यक्तित्व की टकराहट से नही, समझौते और समन्वय की नीति द्वारा।

पति की भूमिका भी आज के वातावरण मे दाम्पत्य जीवन की सफलता के लिए उतनी ही उत्तरदायी है जितनी नारी की। क्योकि अब घर का, बच्चो का, गृहस्थी के अन्य उत्तरदायित्वो का आधा बोझ उसे बटाना है जबकि पत्नी उसके अर्थोपार्जन मे हिस्सा बटाने लगी है। अब उसे पति की प्रतीक्षा मे आँखें बिछाने वाली पत्नी की अपेक्षा नही करनी चाहिए, न पतिव्रता के पुराने आदर्शो मे पली सीता सावित्री जैसी पत्नी की। पति के ऑफिस से लौटते ही पत्नी गरम प्याला चाय बनाकर दे यह भी आवश्यक नही है। इसके अतिरिक्त अन्य कितने ही ऐसे काम है जो परम्परा से नारी के लिए ही सुरक्षित समझे गए थे, किन्तु पुरुष नारी या पति-पत्नी का यह भेद अब अधिक अर्थ नही रखता। जहाँ तक कार्यो का विभाजन है, नारी-पुरुष की भूमिका लगभग समान हो गई है। दाम्पत्य का सुख कार्यो

के विभाजन या बहुत बड़ी आय में नहीं है, यह मनोराज्य का सुख है जिसमें नारी का योग पुरुष से कहीं अधिक है। बाहरी कार्य क्षेत्रों में जहाँ स्त्री की सफलता सराही जा रही है वहीं घर की अव्यवस्था एवं दाम्पत्य जीवन की तनावपूर्ण स्थिति के लिए उसे दोषी ठहराया जा रहा है। ऐसी स्थिति में नारी को अपनी स्थिति पर पुनर्विचार करना होगा। पुरुष की प्रतिस्पर्द्धी बनकर वह जीवन में कितना सुख, कितनी मधुरता, कितनी स्वतन्त्रता का उपभोग कर रही है, इसका अनुमान दम्पत्ति में नित्य प्रति रहने वाली कलह, टूटते विवाह सम्बन्ध, पारिवारिक एवं सामाजिक सम्बन्धों में तनाव आदि की स्थिति से किया जा सकता है। स्पर्द्धा ने प्रेम और विश्वास का आधार उससे छीन लिया है।

योरोपीय देशों में प्रसिद्धि प्राप्त आधुनिक नारी मुक्ति आन्दोलन, पुरुष से मुक्ति आन्दोलन का विकसित रूप है जिसमें विवाह संस्था के प्रति, वैवाहिक जीवन के प्रति एवं नारी के प्रतिबन्धित यौन सम्बन्धों के प्रति गहरा विद्रोह है। इस विद्रोह से नारी को किस स्वर्गिक सुख की प्राप्ति होगी, यह अभी भविष्य के गर्भ में है। भारतीय नारियों में भी इस आन्दोलन की कहीं-कहीं प्रतिक्रिया दिखाई देती है। कुछ स्त्रियाँ बराबर पुरुष विरोधी नारे लगाकर अपनी आधुनिकता का परिचय देती रहती हैं। कुछ लोग पति-पत्नी सम्बन्धों की परम्परा छोड़कर परस्पर सहयोगी के रूप में भी रहने लगे हैं। यह बदलती विचारधारा अभी दाम्पत्य जीवन को कितने रूपों में परिवर्तित करेगी कौन जानता है?

22

विदेशों में नारी

यह सयोग की बात है कि अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष मे मुझे विदेश यात्रा करने का अवसर मिला। पश्चिमी देशो ने इस वर्ष को 'अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष' घोषित किया है और मुझे उन्ही देशो मे जाकर वहाँ की महिलाओ के जीवन को निकट से देखने का अवसर मिलेगा मेरे लिए यह बडे हर्ष का विषय था। देखने और सुनने मे बडा अन्तर होता है। पश्चिमी देश विश्व के सबसे अधिक विकसित, उन्नत और आधुनिक देश हैं। वहाँ महिलाओ की स्थिति बडी ऊँची है। उनका बडा सम्मान है। पुस्तको मे पढी और लोगो से सुनी इस जानकारी के साथ उन्हे आँखो से देखने की मेरी उत्कट जिज्ञासा एक भारतीय महिला होने के नाते कुछ अस्वाभाविक नही थी। आँखो मे न जाने कितने तरह के स्वप्न लेकर मैं विदेश रवाना हुई।

मार्ग मे सबसे पहले मेरी भेंट हवाई जहाज की उन परिचारिकाओ से हुई जो यात्रियो की सुख-सुविधा मे ओठो पर हल्की मुस्कान लिए स्वागत की मुद्रा मे हवाई जहाज के बीच एक सिरे से दूसरे सिरे तक चकरी की तरह घूम रही थी। नीद से जब भी मेरी आँख खुलती मैं देखती वे कभी कुछ, कभी कुछ हाथो मे लिए यात्रियों की सेवा मे रत हैं। मैं सोचती थी कि हवाई जहाज की परिचारिकाएँ बडी भाग्यशाली होती है क्योकि उन्हे देश विदेश घूमने का अवसर मिलता है और खूब अच्छा वेतन मिलता है, किन्तु यहाँ उन्हें इस तरह बराबर पैरो पर खडे देखकर नारी के इस व्यवसाय की मुझ पर कोई अच्छी प्रतिक्रिया नही हुई। विदेशो मे हवाई जहाज की इतनी श्रम साध्य सेवा अधिकाश मे नारियो के लिए सुरक्षित है क्योकि वे ही इस काम को बडे धैर्य और प्यार से कर सकती हैं। समानतावादी देशो में नर नारी के व्यवसाय की यह भिन्नता देखकर मुझे सहसा धक्का लगा। घर मे रहकर यही काम करने वाली नारी दासी कही जाती है और घर से बाहर इसी काम की परिभाषा नारी की उन्नति और प्रगति की सूचक बन जाती है। यह बात मेरे गले नहीं उतरी। मुझे लगा विदेशो मे और उनकी देखा देखी भारत मे नारी के लिए इस तरह की श्रम साध्य सार्वजनिक सेवाएँ नारी की शक्ति और उसके मधुर गुणो के शोषण की

प्रतीक हैं। उसे नौकरी की विवशता मे यह सब करना पडता है अन्यथा क्यो? पुरुष इस काम के लिए उपयुक्त नही समझे जाते।

इग्लैंड, फ्रांस, कनाडा तथा अमेरिका आदि देशो के नारी जीवन को कुछ थोडे बहुत अन्तर के साथ देखकर मुझे ऐसा लगा कि वहाँ नारी जीवन की एक ही प्रतिष्ठा है कि वे स्वावलम्बी हैं तथा किसी रूप मे पुरुष पर आश्रित नही हैं। काम काज का प्रत्येक क्षेत्र उनके लिए पुरुषो के समान खुला है। वहाँ मैंने देखा कि घर से बाहर बडी-बडी दूकानो मे, स्टोर्स मे, फुटपाथ के ठेलों पर, रेस्टोरेन्ट और दफ्तरों मे, अस्पतालो मे, स्कूल के अध्यापन से लेकर अन्य प्रशासनिक कार्यों मे, बाबू गिरी मे, बस तथा हवाई अड्डों पर, रेल के स्टेशन पर, सिनेमा के टिकिट घरो मे सफाई आदि के विभिन्न कार्यों मे महिलाओ की भरमार है। सुबह आठ बजे के बाद लगभग पचास प्रतिशत से ऊपर महिलाएँ घर से बाहर निकल पडती हैं। हाथो मे डबलरोटी या खाने की कोई चीज लेकर खाती हुई सडको के फुटपाथ पर दौडती दिखाई देती हैं। बर्फ पडती हो, वर्षा होती हो, रात हो या दिन हो मौसम की कोई अडचन उन्हें काम से नही रोक पाती। बडी चुस्ती से खट्-खट् करती सजी धजी ये महिलाएँ घर से बाहर निकल पडती हैं और सारे दिन की दौड धूप के बाद शाम को हाथों मे सामान से भरे थैले लटकाए थकी पस्त घर या होटलो और रेस्टोरेन्टो की शरण लेती हैं। कहने का तात्पर्य यह कि अपने अस्तित्व व जीविका के लिए वहाँ महिलाओं को कठोर परिश्रम करना पडता है। पेरिस मे एक बस की कण्डक्टर महिला को मैंने देखा जिसकी ड्यूटी रात के 9 बजे से सुबह 3 बजे तक थी। बडी निर्भीकता और कुशलता से वह अपना काम कर रही थी। ड्यूटी के बाद सुबह तीन बजे उसे सडक पर अकेली चलते देख मुझे अपने देश की उन महिलाओ का ध्यान आया जो बिना किसी पुरुष के सहारे दिन मे भी अकेली चलने मे घबराती हैं। विवाह आदि के मामलो मे पश्चिमी महिलाएँ पूरी तरह से स्वतन्त्र हैं। पति के चुनाव मे उन्हें किसी सरक्षक या परिवार के किसी सदस्य की सहायता नही लेनी पडती। कनाडा मे मुझे बताया गया कि यहाँ लडकियो को अपना पति चुनने मे कम से कम बारह-तेरह लडको से सम्पर्क स्थापित करना पडता है। यदि कोई लडकी विवाह से पहले केवल एक लडके के साथ रहना पसन्द करती है तो माता की चिन्ता का विषय बन जाती है। वह उसे मनोचिकित्सको के पास ले जाती है और पूछती है कि मेरी लडकी में क्या खराबी है जो वह एक से ज्यादा लडको को अपनी ओर आकर्षित नहीं कर पाती। विदेशों मे विवाह की इस पद्धति मे नारी की जो स्थिति है वह किसी भी रूप में हमारे देश की महिलाओ की स्थिति से अच्छी नही है। वहाँ विवाह दो आत्माओ के मिलन या परिवार के उत्तरदायित्वो के वहन का सूचक न होकर एक प्रकार का व्यवसाय है जो लेन-देन की प्रक्रिया पर टिका है। इसमे जरा सा भी फर्क आने पर विवाह सम्बन्ध टूट जाता है और फिर नए सिरे से जीवनसाथी की खोज प्रारम्भ होती है।

नर नारी के जीवन के मानसिक संघर्ष और तनाव की यह स्थिति विदेशी जीवन का घोर अभिशाप है। अमेरिका में पत्नी की पिटाई एक सामान्य घटना है।

प्यार के नाम पर वहाँ दिखावा तो बहुत है किन्तु नारी के व्यक्तित्व का सम्मान व उसके गुणो की प्रतिष्ठा वहाँ नही दिखाई देती। न घर मे उसे चैन है, न घर से बाहर कोई आराम है। वहाँ बच्चो की सख्या कम है। बच्चो वाली स्त्री पुरुष के लिए भार बन जाती है। वह नौकरी पर नही जा पाती। बच्चो की देखरेख के लिए अलग से आया रखनी पडती है जो बहुत महँगी पडती है। बच्चो के थोडे बड़े होने पर माताएँ उनसे पृथक् हो जाती हैं। दस-बारह साल की लड़की अपनी जीविका स्वय उपार्जित करने का प्रयास करती है। किसी भारतीय पिता को अपने पुत्र की शादी का प्रबन्ध करते देखकर कनाडा की एक लडकी को बडा आश्चर्य हुआ। वह कहने लगी आपके बच्चे कितने भाग्यवान हैं जो माता पिता की देख रेख मे रहते हैं और शादी ब्याह की चिन्ता से मुक्त रहते है। हमे देखिए सब कुछ अपने आप करना पडता है। इसी प्रकार एक भारतीय पति को अपनी पत्नी की देखभाल बडे प्यार से करते देख वहाँ की एक महिला ने पूछा क्या ये आपके होने वाले पति हैं ? महिला ने उत्तर दिया नही ये मेरे पति हैं। विदेशी महिला के आश्चर्य का ठिकाना नही था। कहने लगी क्या विवाह के बाद भी पति पत्नी की देखभाल इतनी अच्छी तरह करते हैं ? वृद्धावस्था मे महिलाओ की वहाँ और भी दुर्दशा है। इन बूढी स्त्रियो को वहाँ कोई नही पूछता। सिर हिलाती हाथ मे छडी लिए कितनी वृद्धाएं सडक पर चलती किसी ऐसे व्यक्ति की प्रतीक्षा मे खडी रहती हैं जो उनकी व्यथा सुनने के लिए थोडा सा समय निकाल सके। व्यावसायिक देशो में कहाँ किस को इतना अवकाश है जो उनकी व्यथा सुन सके। लडकियाँ धनी लडको के पीछे दीवानी रहती हैं। डाक्टरी पेशा वहाँ सबसे अधिक आय का साधन है और दाँत के डॉक्टरो की आय का तो कुछ कहना ही नही। मैंने देखा होस्टलो मे लडकियाँ इन्ही को अपना पति बनाने का प्रयास करती हैं जिससे जीविका का सकट कुछ हलका हो। भारत मे दहेज प्रथा जिस तरह नारी जीवन का अभिशाप है उसी तरह विदेशो मे धनी पति की लालसा। नारी के व्यक्तित्व का सम्मान एव उसके गुणो की प्रतिष्ठा वहाँ बहुत कम है। विवाह की सारी कठिनाई उसे स्वय झेलनी पडती है।

सारांश यह कि विदेश मे महिलाओ की जो स्थिति है सम्भवत उसी मे सुधार के लिए इस वर्ष अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष मनाया जा रहा है। भारत में इस प्रकार की समस्याएँ नही हैं। यहाँ की सस्कृति मे स्त्रियो का बडा ऊंचा स्थान है। वे पुत्री, पत्नी और माता तीनो रूपो मे पुरुष के स्नेह, प्यार और श्रद्धा की पात्र है तथा उनकी सुरक्षा और जीविका की पूरी व्यवस्था है केवल उसकी ओर समुचित ध्यान देने की आवश्यकता है।

23

राष्ट्र के नैतिक उत्थान में आर्य समाज का योग

उन्नीसवी शताब्दी उत्तरार्द्ध एवं बीसवी शताब्दी पूर्वार्द्ध के भारत को यदि स्वामी दयानन्द एव उनके आर्य समाजी आन्दोलन से प्रभावित एव सचालित भारत कहें तो अत्युक्ति न होगी। लगभग सौ वर्ष तक यह आन्दोलन बडे उग्र एवं व्यापक रूप में भारत की सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक, नैतिक एवं राजनीतिक स्थितियो पर अपना प्रभुत्व जमाए रहा। राजनीतिक क्षेत्र मे यद्यपि कांग्रेस सर्वाधिक लोक-व्यापी सस्था के रूप मे कार्य कर रही थी किन्तु इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि कांग्रेस अपने राजनीतिक लक्ष्य की पूर्ति के लिए बराबर उन कार्यक्रमो को अपनाती रही जिन्हे आर्य समाज ने देश के नैतिक एव सामाजिक उत्थान के लिए परमावश्यक घोषित किया था और जिनके अभाव में देश की स्वतन्त्रता मात्र एक स्वप्न सिद्ध होती। महात्मा गाँधी की राजनीति मे धर्म एव सामाजिक सुधारो का समावेश आर्य समाजी सिद्धान्तो की प्रतिच्छाया है। कांग्रेस के अछूतोद्धार, अस्पृश्यता निवारण, महिला उत्थान, हिन्दी-प्रचार, स्वदेशी वस्तुओं के प्रति अनुराग हस्तशिल्प, प्राचीन-सस्कृति की प्रतिष्ठा, शिक्षा का प्रचार आदि विभिन्न कार्यक्रम आर्य समाज की ही देन हैं इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

उन्नीसवीं शताब्दी मे उद्भूत अन्य सामाजिक एव धार्मिक आन्दोलन जबकि अपना अल्पकालिक प्रभाव छोडकर इतिहास शेष हो गए तब आर्य समाज अपनी सुधारवादी योजनाओ एव पवित्रतावादी सिद्धान्तो के माध्यम से लगातार जन सामान्य के बीच प्रसिद्धि पाता रहा। विचित्रता यह है कि जिस सस्था को अपने जन्म के समय धर्म प्राण हिन्दू जनता का भयकर विरोध सहना पडा, धीरे-धीरे वही अपने उच्च नैतिक आदर्शों के कारण भारतवर्ष की शिक्षित एव समझदार जनता का मुख्य आकर्षण केन्द्र बन गई। बीसवीं शताब्दी का जाग्रत भारत बहुत कुछ अर्थों में आर्य समाजी चेतना का भारत है जिसमें आचरण की श्रेष्ठता, व्यवहार मे शालीनता, मद्यमांस का निषेध, पाखण्डों से घृणा, नारी का सत्कार, सादा एव सयंमी जीवन का आग्रह

शृंगारिकता का निषेध, सत्य, अहिंसा, परोपकार, देशभक्ति आदि सद्प्रवृत्तियो एव नैतिक गुणो के प्रति अटूट आस्था है। निराकार, निर्गुण ईश्वर की प्रतिष्ठा द्वारा आर्य समाज ने उन सभी प्रचलित धर्मों की आस्था के समक्ष प्रश्न चिह्न लगा दिया जो वाह्याचारो से परिपूर्ण थी और जिनमे दिखावा अधिक और मानवता के नैतिक गुणो का विकास अपेक्षाकृत कम था। मूर्तिपूजा के बहाने मन्दिर और मन्दिर के पुजारी, दुराचार और अनाचर के अड्डे बन गए थे। सारा पाखण्ड इन मन्दिरो मे पल रहा था। आर्य समाज ने अपने अकाट्य तर्कों द्वारा इनके विरुद्ध जैसे जिहाद छेड दिया। भजनो और उपदेशो द्वारा पाखण्डो एव अनैतिक आचारो की ऐसी पोल खोली कि बडे-बडे दिग्गज डगमगा गए। महा परम्परावादी एव अन्धविश्वासी लोग भी आर्य समाजी कहलाने मे गौरव का अनुभव करने लगे। मूर्तिपूजा एव सनातन-धर्म की आस्थावादी जनता 'अजब हैरान हूँ भगवान् तुम्हे कैसे रिझाऊं मैं' की निराकार निर्गुणवादी भक्ति के गीत गाने लगी। राम और कृष्ण अवतार अथवा साक्षात् भगवान् न माने जाकर आदर्श पुरुष के रूप मे प्रतिष्ठित हुए। सदियो पुरानी रूढ परम्पराओ और अन्ध श्रद्धाओ के प्रति जनमानस मे एक प्रकार की घृणा अथवा अश्रद्धा उत्पन्न करके आर्य समाज ने मानवता के उज्ज्वल स्वरूप के प्रति आस्था उत्पन्न की। आचरण की पवित्रता, परोकार सत्य एव अहिंसा, 'मानवता के प्रति आदर आदि गुण ही जीवन के सर्वोच्च गुण है इस ओर मनुष्यो का ध्यान आकर्षित किया। बहु-विवाह से फैली अनैतिकता अथवा बाल-विधवाओ के कारण उत्पन्न समाज की भीषण अनैतिक स्थिति से समाज को अवगत कराके एक पत्नीव्रत तथा विधवा-विवाह का आदर्श प्रतिष्ठित किया। वेश्यावृत्ति को मानवता का घोर-कलक सिद्ध किया। इस प्रकार समाज के वे समस्त पक्ष जिनके कारण जीवन में अनैतिकता फैल रही थी आर्य समाज के उग्र खण्डन एव प्रचार पद्धति से सुधार की ओर अग्रसर हुए। नारी के कामिनी रूप की अपेक्षा माता एव बहिन के पवित्र सम्बन्धो की प्रतिष्ठा मे आर्य समाज ने कुछ उठा नही रखा। विवाह शादियो के अवसर पर गाए जाने वाले अश्लील गीतो की परम्परा को आर्य समाज के सद्प्रयत्नो ने समाप्त करने मे योग दिया। गुरुकुलीय शिक्षा प्रणाली द्वारा उसने राष्ट्र को सयमी, सदाचारी एव देशभक्त नव-युवक एव नव-युवतियाँ प्रदान करने का बीडा उठाया। वे तीर्थ स्थान जहाँ कभी ऋषि-मुनि धर्म के गूढ तत्त्वो का अनुसन्धान कर आत्मिक उन्नति का पाठ पढाते थे वहाँ अनाचार फैला हुआ था। तीर्थ स्थानो पर बैठे हुए पण्डे इन स्थानो को नरक बनाए हुए थे। आर्य समाज ने इनके गढ उखाड दिए। ढोगी साधु-सन्तो से छुटकारा दिलाया। देश के नैतिक उत्थान मे ये सारे कार्यक्रम आर्य समाज की अपूर्व देन है। सदियो की काहिली से देश को मुक्त कर राष्ट्र मे स्वच्छ नैतिक वातावरण बनाने में आर्य समाज का योग अविस्मरणीय रहेगा।

साहित्य के क्षेत्र मे भी आर्य समाज के नैतिक सिद्धान्तो का प्रभाव अक्षुण्ण हैं। हिन्दी का भारतेन्दु-युग एव द्विवेदी-युग तो आर्य समाज के नैतिक सिद्धान्तो का साहित्यीकरण है ही इसके बाद भी वह किसी न किसी रूप मे साहित्य को बराबर

प्रभावित एवं प्रेरित करता रहा। कविवर दिनकर के शब्दों में 'कन्या शिक्षा और ब्रह्मचर्य' का आर्य समाज ने इतना अधिक प्रचार किया कि हिन्दी प्रान्तों में साहित्य के भीतर एक प्रकार की पवित्रतावादी भावना भर गई और हिन्दी के कवि कामिनी नारी की कल्पना मात्र से घबराने लगे। पुरुष शिक्षित हो, स्वस्थ हो, नारियाँ शिक्षिता हों, और सबला हों, लोग सस्कृत पढ़ें और हवन करें, कोई भी हिन्दू मूर्तिपूजा का नाम न ले, न पुरोहितों, देवताओ और पण्डो के फेर मे पड़े, ये उपदेश उन सभी प्रान्तों में कोई पचास साल तक गूँजते रहे जहाँ आर्य समाज का थोड़ा भी प्रचार था ?"

राधा-कृष्ण की शृंगारिक लीलाओं के विशद् वर्णन नायक-नायिका भेद एवं कामिनी के नखशिख के अत्युक्ति पूर्ण अश्लील वर्णन की साहित्यिक परम्परा से साहित्य को मुक्ति दिलाने मे आर्य समाज का योग सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। साहित्य ने देश की दुरवस्था तथा धार्मिक, सामाजिक, नैतिक विषयों का समावेश आर्य समाज की प्रेरणा का फल है। कवियो ने शृंगारिक विषयों को छोड़कर जनता को नैतिक उत्थान, उत्साह और उद्योग का पाठ पढाया। उन्होंने कहा—

विद्या सम्पत्ति धर्माचार यही तीन सब सुख के सार।
इनका सग्रह करो विचार, सुख भोगो फिर सभी प्रकार ॥
बाकी रहे घडी दो रात उठ बैठो तब जान प्रभात।
भक्ति सहित लो हरि का नाम सोचो अर्थ धर्म के काम ॥

× × ×

करो प्यार पूरा सदाचार पै, दुराचार ने जी जलाना नहीं।
निरालम्य विद्या बढाते रहो, अविद्या नटी को नचाना नहीं ॥
अहिंसा न छोड़ो दया दान दो, किसी जीव को भी सताना नहीं।
अनाचार से जाति के मेल को, घृणा के गढ़े में गिराना नहीं ॥

इस प्रकार की सैकड़ों रचनाएं आर्य समाज के प्रचार और प्रभाव का प्रत्यक्ष फल है। साहित्य मे नैतिक सुधारो के प्रभाव का सर्वोत्तम उदाहरण है अयोध्यासिंह उपाध्याय रचित प्रिय प्रवास। "जो राधा सूर मे लौकिक प्रेम के उत्कर्ष पर पहुँच कर गम्भीर आध्यात्मिक आशय का प्रतीक बनी थीं, बिहारी मे औपचारिक दृष्टि से आध्यात्मिक बनी रहकर वास्तव मे प्रतिशोध पूर्वक पृथ्वी पर उतर आई थीं वे हरिऔध के प्रिय प्रवास में एक प्रबुद्ध समाज सेविका का रूप धारण कर लेती है।" यहाँ राधा और कृष्ण के परम्परागत स्वरूप परिवर्तन में आर्य समाजी चेतना स्पष्ट देखी जा सकती है। राधाकृष्ण की केलि लीलाओ का जो विस्तार शृंगारिक साहित्य में हुआ है उसे आर्य समाज ने शुद्ध पवित्र सदाचारी मानव के रूप मे जनता के समक्ष प्रस्तुत कर परिवर्तन की एक ठोस दिशा प्रदान की है। साहित्य मे शृंगारिक प्रवृत्तियों मे वितृष्णा उत्पन्न करने मे आर्य समाज की महत्त्वपूर्ण भूमिका को प्राय सभी सुधीजन स्वीकार करते हैं। कविवर दिनकर की मान्यता है कि 'गांधी युग से ठीक पूर्व हिन्दी साहित्य में जो युग बीत रहा था उसे हम किसी हद तक दयानन्द युग कह

सकते हैं। वे बुद्धिवाद के पोषण एव पौराणिक सस्कारो के भजन मे इस जोर से लगे कि उनके उपदेशो से भक्ति, शृ गार और रहस्यवाद का पक्ष आपसे आप कमजोर पड गया।"

इस भाँति राष्ट्र के नैतिक उत्थान मे आर्य समाज की सर्वतोमुखी भूमिका है। आर्य समाज द्वारा सचालित शिक्षण सस्थाओ मे पाठ्यक्रम के अन्तर्गत उन्ही पुस्तको को रखा जाता था जिनमे शृ गारिकता अथवा आचरण सम्बन्धी कोई ऐसी बात न हो जो विद्यार्थी के कोमल मस्तिष्क पर विपरीत प्रभाव डाले। महाभारत जैसे ग्रन्थ का अध्ययन विद्यार्थियो के लिए इसलिए निषिद्ध था क्योकि उसमे चरित्र सम्बन्धी उच्च आदर्शों के स्खलन की अनेक कथाएं समाविष्ट हैं। रासलीला, नाटक, नृत्य आदि के प्रति भी आर्य समाज का दृष्टिकोण बहुत अच्छा नही था क्योकि इसमे कई दिशाएँ ऐसी होती हैं जो कभी-कभी चरित्रोत्थान मे सहायक होने की अपेक्षा चरित्र पर बुरा प्रभाव डाल सकती हैं। तात्पर्य यह कि आर्य समाज ऐसे शुद्ध पवित्र आचरण की समर्थक सस्था थी जिसने देश मे वैदिक सभ्यता एव पुरातन सस्कृति के उच्चादर्शो की प्रतिष्ठा मे पूर्ण मनोयोग से कार्य किया और देश मे पुन पवित्र वातावरण उत्पन्न करने का अदम्य साहस किया।

स्वतन्त्र भारत के इतिहास मे आर्य समाज की यह देन स्वर्णाक्षरो मे अकित होनी चाहिए।

24

'कन्या अपितृत्वं खलु नाम कष्टम्'

संस्कृत की एक बहुत पुरानी उक्ति है 'कन्या पितृत्वं खलु नाम कष्टम्' अर्थात् कन्या का पिता होना (माता होना भी) बड़े कष्ट का विषय है। मध्ययुगीन सामाजिक परिस्थितियों से गले तक तंग आकर जिस किसी ने यह कन्या-विरोधी उक्ति कही होगी यदि वह आज के युग में होता तो निश्चय ही अपनी धारणा बदल देता और कहता 'कन्या अपितृत्वं खलु नाम कष्टम्' अर्थात् कन्या का पिता न होना बड़े कष्ट का विषय है। तथ्य यह है कि आज की समुन्नत विशेषत नारी जाति की समुन्नत एवं परिवर्तित स्थिति ने पुत्री का नहीं पुत्र का पिता होना बड़ा कष्टकर हो गया है। लोग अनुभव करने लगे हैं कि पुत्र के पिता होने से पुत्री का पिता होना कहीं अधिक सुखकर है। बड़े भाग्यशाली हैं वे जो कन्या के, केवल कन्या के पिता हैं। पुत्री के सुख से वंचित माता-पिता को अपना जीवन कुछ नीरस, कुछ सूना सा प्रतीत होता है। सुनने में बात कुछ अटपटी और तथ्य विहीन लग सकती है किन्तु धार्मिक, मनोवैज्ञानिक एवं नैतिक आधार पर सत्य है।

अधिकारिणी घोषित हो रही हैं। यही स्थिति अन्य बहुत से क्षेत्रों की है। राजस्थान के भूतपूर्व मुख्यमन्त्री श्री बरकतुल्लाखाँ साहब ने एक कन्या शिक्षण संस्था के वार्षिकोत्सव पर कन्याओं को आशीर्वाद देते हुए एक बार कहा था कि "पुत्रियो मैं आपको सावधान कर देना चाहता हूँ कि आपको जीवन का दुहरा उत्तरदायित्व सम्भालना है क्योंकि भविष्य मे आपको बडे निकम्मे पति मिलने वाले हैं।" उनका सकेत लडकों की वर्तमान स्थिति की ओर था जो शिक्षाकाल मे और सब कुछ करते हैं केवल पढते नही हैं। अधिकांश माता-पिता को अपने पुत्रों से शिकायत है कि वे मनमानी करते हैं, निकम्मे है जबकि पुत्रियाँ पढाई मे अच्छी और शालीन हैं। पुत्रों की वर्तमान स्थिति क्या इस बात की साक्षी नही है कि पुत्र की अपेक्षा पुत्रियाँ अधिक सुखदायक और उत्तम हैं।

भौतिक दृष्टि से कन्या की स्थिति पर विचार कीजिए तो व्यावसायिक क्षेत्रों मे लडकियों को समान रूप से सेवा के अवसर प्राप्त होने लगे हैं। कहीं-कहीं तो विशेष रूप से कन्याओं को ही चुना जाता है क्योंकि वे अधिक परिश्रम एव सतर्कता से कार्य करती हैं। प्रशासन के ऊँचे-ऊँचे पदों से लेकर सार्वजनिक सेवाओं मे जैसे दुकानों मे, अच्छी फर्मों के विज्ञापन दफ्तरों मे, प्राइवेट सेक्रेटरी के स्थान पर, हवाई जहाज की परिचारिकाओं के रूप मे, टाइप कार्य मे, समाज कल्याण, अध्यापन, स्वास्थ्य सेवा आदि कार्यों मे महिलाओं को प्राथमिकता दी जाने लगी है। कुछ स्थान विशेष रूप से उनके लिए सुरक्षित रखे जाते हैं। कन्याओं की अर्थोपार्जन क्षमता अब पुत्रों से कम नही है। ऐसी स्थिति मे कन्या का विवाह जो माता-पिता के लिए सबसे भयावह सकट माना जाता था क्रमश कम हो रहा है। कन्याएँ स्वय ही अपने पैरों पर खडी होकर न केवल अपनी अपितु अपने परिवार की आर्थिक समस्या दूर करने लगी हैं। इस प्रकार आर्थिक दृष्टि से पुत्र की अपेक्षा पुत्रियाँ अधिक काम्य हैं।

यदि सौभाग्य से किन्हीं महानुभावों के पुत्र बहुत अध्ययनशील हैं, तो भी उनसे विशेष लाभ की आशा नही है। यदि वे इजीनियरी मे पढ रहे हैं सरकार के पास इंजीनियरों की खपत नही, यदि वे डाक्टरी पढ रहे हैं तो देश मे डाक्टरों को नौकरी नहीं, यदि केवल बी ए या बी एससी आदि कर रहे हैं तो उनकी नौकरी का भगवान मालिक है। ऐसी स्थिति मे पुत्र पढे भी तो क्या और न पढे भी तो क्या। पुत्र की पढाई मे ज्यादा मे ज्यादा धन खर्च करके भी पिता की चिन्ता मिटने के बजाय बढती जाती है। कारण, पढ लिखने के बाद पुत्र आँखों के सामने खाली बैठा रहे, इससे ज्यादा सताप की बात और क्या होगी? घर बैठी कन्या हृदय को इतनी नही सालती जितना ठाली बैठा पुत्र। पढी लिखी लडकी को नौकरी मिलना अधिक सुलभ हो गया है। स्वतन्त्रता के बाद स्त्रियों ने प्रत्येक क्षेत्र मे जिस लगन और तत्परता से कार्य कर दिखाया है उससे स्त्रियों के प्रति पुरुषों की हीन भावना न केवल कम हो गई है अपितु उनके लिए सम्मान बढ गया है। अब कन्या माता-पिता के लिए अभिशाप न होकर वरदान बन गई है। रेल की, सिनेमा की टिकिट प्राप्त करने मे कन्या कितनी सहायक होती है सब जानते हैं।

कन्या के विवाह के लिए वर ढूंढना और दहेज जुटाना माता-पिता के लिए सबसे बडी समस्या मानी जाती है और इसी समस्या से परेशान होकर सम्भवत माता-पिता कन्या को बोझ, पत्थर और न जाने क्या-क्या मानते हैं। किन्तु पढी लिखी योग्य पुत्री स्वय इन कार्य मे माता-पिता का हाथ बँटाने लगी है। कन्या का विवाह आधुनिक युग मे पहले युगो की भाँति जटिल और कष्टकारक नहीं रहा। विवाह के सम्बन्धो में जाति-पाँति, कुल, सम्प्रदाय, धर्म आदि की अभेद्य दीवारें जो प्राचीन काल मे थी अब नही रहीं। पहले पुत्री के लिए वर ढूंढते समय समान जाति, समान कुल, समान जन्म पत्री, राशि, गोत्र और न जाने किन समानताओं को देखना पडता था। आधुनिक युग मे इन सबसे पीछा छूट गया है और रहा सहा दिन-दिन छूटता जा रहा है। आगामी वर्षो मे तो इनकी चर्चा भी पिछडेपन और मूर्खता की निशानी मानी जाने लगेगी। आप अपने पास-पडौस मे, इष्ट मित्रों में, सगे सम्बन्धियों में दिन-रात देखते और सुनते होंगे कि किस प्रकार अन्तर्जातीय, अन्तर्प्रान्तीय और अन्तर्राष्ट्रीय विवाहो की सख्या दिनदूनी रात चौगुनी बढती जा रही है। अब बगाली-पजाबी, पजाबी-महाराष्ट्री, ईसाई-हिन्दू, मुस्लिम-हिन्दू, ब्राह्मण-बनिया, उत्तरी-दक्षिणी, भारतीय-यूरोपियन आदि भिन्न प्रान्तीय, भिन्न धर्मी, भिन्न राष्ट्रीय विवाह बहुत सामान्य हो गए हैं। इतने व्यापक-क्षेत्र के कारण कन्या के लिए वर प्राप्ति कठिन समस्या नही रही। यहाँ एक शका किसी के मन में उठ सकती है कि क्या ऐसे विवाहों को समाज पसन्द करता है? किन्तु यह शंका अब यथार्थ मे कोई महत्त्व नहीं रखती। सत्य तो यह है कि आजकल ऐसे ही विवाह माता-पिता व वर कन्या की आधुनिकता, प्रगतिशीलता एव उच्च उदारता के उदाहरण माने जा रहे हैं। आपको कन्या के लिए अच्छा वर चाहिए, न कि अच्छी जाति और कुल।

प्रेम विवाहों के इस युग मे वर ढूंढने या जाति कुल देखने का प्रश्न ही कहाँ उठता है? प्रेम विवाहों ने कन्या सम्बन्धी सब कष्टो से छुटकारा दिला दिया है। इनमे न आपको पुत्री के रूप-सरूप की चिन्ता करनी पडती है और न धन, पद या मर्यादा की। पुत्रियाँ स्वयं ही इसमें माता-पिता की सहायक बनने लगी हैं। दहेज का सकट इन प्रेम विवाहों द्वारा दूर होता जा रहा है। ऐसे कन्या सुलभ युग मे पुत्रों की अपेक्षा कन्या कितनी सुखकर हो गई है यह विचारणीय है।

शास्त्र कहते हैं कि पुत्र इसलिए सुखकर है कि वह 'पुन्नाम' नरक से माता-पिता का उद्धार करता है। 'पुन्नाम नरकात् त्रायते इति पुत्र।' कन्या यह कार्य नहीं कर सकती। किन्तु पुत्र और पुत्री तो समानार्थ सूचक शब्द हैं। पुन्नाम नरक से त्राण करने वाला पुत्र और पुन्नाम नरक से त्राण करने वाली पुत्री—इनमें क्या भेद है? केवल समझ का फेर है। एक पुरानी कहावत है कि खोटा पैसा और खोटा बेटा ही समय पर काम आता है। किसी युग में यह बात सत्य होती होगी आज के युग मे अच्छे पैसे की ही कीमत घट गई है तब खोटे पैसे की तो बात ही क्या? इसी भाँति अच्छे पुत्र ही अब माता-पिता के काम नहीं आते तो खोटे बेटे से क्या आशा की जा सकती है? पुत्र सोने की सीढी चढाएगा, कुल का नाम चलाएगा, आडे वक्त

काम आएगा यह पुरानी विचारधारा अब अवैज्ञानिक और दकियानूसी समझी जाती है। आज के भौतिक युग मे पुत्र को इतना अवकाश कहाँ कि वह माता-पिता की सेवा करे या धनादि से उनकी सहायता करे, उसे अपने ही परिवार के भरणपोषण की चिन्ता से छुटकारा नही मिलता। कुल का नाम चलाने मे पुत्र-विहीन राजर्षि-जनक की पुत्री सीता के नाम से कौन अपरिचित है? एक पुत्री ने दोनो कुलो का नाम अमर कर दिया। जनक परिवार का नाम जानकी से ही तो चला है। कन्या दुःख मे, सुख मे, हर्ष विषाद मे सदा अपने माता-पिता का साथ निभाती है। पिता-पुत्री जैसा पवित्र और स्नेहमय सम्बन्ध इस धरती पर नही दिखाई देता। माता को निःस्वार्थ प्रेम करने वाली केवल पुत्री होती है। उसके हृदय मे सदा माता-पिता का प्यार विद्यमान रहता है। पुत्र की अपेक्षा पुत्री माता-पिता को अधिक प्यार करती है। कन्या का पिता होने का सबसे बडा सुख यही है। आज जबकि, जीवन मे स्नेह और प्रेम का, मानवीय सवेदनाओ का अभाव बढता जा रहा है तब एकमात्र पुत्री ही है जिससे स्नेह-प्राप्ति की आशा की जा सकती है। धन्य है उनका जीवन जिन्हे पुत्रियो का दुलार प्राप्त है। पुत्री का अभाव सचमुच जीवन का कितना बडा अभाव है?

सन्तानहीन माता-पिता जब गोद लेने के लिए पुत्र की तलाश मे इधर उधर भटकते हुए दिखाई देते हैं तो मैं उन्हे यही सलाह देती हूँ कि पुत्र नही पुत्री को गोद लेकर जीवन सफल बनाइए। पुत्री तुम्हें प्यार देगी, तुम्हारा घर आनन्द से भर देगी। पुत्र का क्या विश्वास कि वह कैसा निकलेगा? ईश्वर की दया से अच्छा निकल भी गया तो क्या विश्वास कि बहू तुम्हे अच्छी मिलेगी। पुत्री के सम्बन्ध मे ऐसी शका कम है, वह विवाह के बाद भी आपको पूरा स्नेह देगी, आप उसे अपने पास भी रख सकेंगे। वह आपसे अलग होने की इच्छा नही करेगी।

इन सबके अतिरिक्त पुत्री के बिना घर की शोभा नही होती। घर के वातावरण मे सरसता, रगीनी व कलात्मकता नही आती। नृत्य-सगीत, शिल्प, पाकशास्त्र जैसी ललित कलाएँ कन्या के माध्यम से ही तो घर को सुशोभित करती हैं। धार्मिक दृष्टि पुत्रियो से ही घर को पवित्र मानती है। जिस घर मे कन्या नहीं होती पुराने लोग कहते हैं कि उस घर का दिया हुआ दान व्यर्थ जाता है। उनका घर अनव्याहा रहता है। जब सभी दृष्टियो से पुत्री पिता के सुख का कारण है तो उसे कष्टकर क्यो माना जाए और पुत्र की आशा मे परिवार क्यो बढाया जाए? यदि आपके घर पुत्री है तो भगवान् को लाख धन्यवाद दीजिए। हिप्पी और बीटल्स की सस्कृति के इस युग मे पुत्रो के स्थान पर पुत्रियो की कामना कीजिए और कष्टो से छुटकारा पाइए।

जिस घर मे लक्ष्मी रूपा कन्या प्यार से भरे स्वर में 'माँ' को पुकारती घर को गुंजरित करती है वहाँ माता-पिता को विश्व का कौनसा वैभव प्राप्त करना शेष रह जाता है? निःस्वार्थ प्यार करने वाली पुत्री ही जीवन की सबसे बडी आशा और समृद्धि है।

25

जीवन की एक उत्तम कला : मित-भाषण

जीवन जीना ही एक कला है। यो तो जो भी जन्म लेता है अपने ढग से रो-गाकर जी लेता है। जानवर भी जन्म लेकर अपने रहने और खाने का जुगाड कर लेते हैं। कौआ कांउ-कांउ करके सौ वर्ष तक जी लेता है पर ऐसा जीना-जीना नही, जिन्दगी का बोझ ढोना कहलाता है। जीना उन्ही का सार्थक होता है जो अपने सद्व्यवहार से, अपनी बोलचाल से दूसरो का दिल जीत लेते हैं और अपने आचरण की एक अमिट छाप दूसरो पर छोडते हैं। ऐसे लोगों के उठने बैठने, खाने-पीने, पहनने-ओढने मे बातचीत और व्यवहार मे ऐसी मर्यादा, ऐसा सलीका होता है कि लोग उनकी ओर खिचे चले आते हैं, उनसे बात करने के लिए लालायित रहते हैं और उनकी उपस्थिति सबको आनन्द देती है। किन्तु कुछ लोग उसी को इतने फूहडपन से बिताते हैं कि उनके पास बैठने को मन नहीं करता। उनके मिलने से मूड खराब हो जाता है और सोचते हैं कि जितनी जल्दी इनसे छुटकारा मिले उतना अच्छा। सच यह है कि जीने की कला सबको नही आती।

जीवन को सफल और मधुर बनाने की एक सबसे बडी कला कम बोलना, समय पर बोलना और सीमा मे रहकर बोलना है। विश्व के सारे शास्त्र इस बात पर एकमत हैं कि जो अपनी जिह्वा को वश मे रखता है कि वह जीवन भर नियन्त्रण मे रहता है किन्तु जिसका जीभ पर वश नही वह नाश को प्राप्त होता है। सीमा से बाहर बोलने का तात्पर्य है आपत्तियो को जन्म देना। मनुष्य के सारे गुण, अवगुण बन जाते हैं यदि उसे ढग से बोलने की आदत नही है। मुझे एक इन्टरव्यू की बात याद है जिसमे नौकरी की इच्छुक एक बहिन अपनी सीमाएँ भूलकर अनावश्यक रूप से बराबर बोले जा रही थी। वे समझ रही थी कि जितना अधिक बोलेंगी उतना ही अधिक परीक्षको पर प्रभाव पडेगा। जब उन्हें रोक कर कहा गया कि आप उतना ही बोलिए जितना आपसे पूछा जाए, इस पर वे आवेश में आकर बोली "पहले मैं जो कहूँ सुन लीजिए फिर कुछ पूछिए।" परिणाम यह हुआ कि वे सबकी आँखो से उतर गई। मैं सोचती हूँ कि अपनी असीमित बोलने की आदत के कारण जीवन के किसी क्षेत्र मे इस बहिन को सफलता शायद नही मिल सकेगी। वे सबको अपनी बात सुनाती रहेंगी और कोई उनकी बात ध्यान से नही सुनेगा। हर एक

बात की मर्यादा होती है मनमानी से काम नही चलता । गुण की मर्यादा तोडने पर गुण अवगुण हो जाते हैं । धर्मराज युधिष्ठिर को अपनी अतिशय धर्मवृत्ति के कारण पग-पग पर लाँछित होना पडा था ।

बहुत से लोग स्पष्टवादिता को बडा भारी गुण समझकर समय असमय कडुवी बात बोलने से नही चूकते । वे कहेंगे देखो भई हम तो साफ-साफ कहना जानते हैं चाहे किसी को बुरा लगे या भला, हमे इसकी कोई चिन्ता नही है । किन्तु साफ कहने की भी तो सीमा होती है । वह सचाई किस काम की जिससे किसी का भला होने के बजाय उल्टा मनो मे फर्क पड जाए । स्पष्ट बोलने के बहाने लोग अपने मन की कचोट निकालते रहते हैं । साफ कहना उस समय अच्छा लगता है जब कोई आदमी भय से, दवाव से या अर्थ के लालच से सच्ची बात छिपाकर झूँठ बात कहने की चेष्टा करता है । पर बिना बात कडुवी बातें कहकर किसी के जी को दुखाना स्पष्टवादिता नही कोरा ढोंग है । सस्कृत की एक प्रसिद्ध कहावत है "सत्यम्ब्रूयात्, प्रिय ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्" अर्थात् सच बोलो, प्रिय बोलो, किन्तु अप्रिय सत्य कभी न बोलो । बिना लाभ स्पष्टवादिता अप्रिय सत्य कहलाती है । राम जब वन को गए तो सुमन्त उन्हे छोडने साथ गए । लौटते समय सुमत ने राम से पूछा कि राजा दशरथ को जाकर आपका क्या सदेश दूँ । राम कुछ कहने ही जा रहे थे कि लक्ष्मण आगे बढकर कुछ उल्टी सीधी उन्हे सुनाने लगे । लक्ष्मण भूल गए कि चोट खाए राजा दशरथ के हृदय पर उनकी कडुवी बातें क्या असर करेंगी । यद्यपि लक्ष्मण जो कुछ कह रहे थे वह सत्य था, किन्तु सत्य बोलने की भी सीमा होती है । राम ने उन्हे तुरन्त रोका और सुमन्त से प्रार्थना की कि पिता को यह बात बिल्कुल मत कहना । सुमन्त राम की मर्यादा और समयानुकूल बात से गद्‌गद् हो गए । काने को काना कहना सत्य नही ओछापन है ।

हँसी मजाक की बात भी इसी श्रेणी मे आती है । हँसना स्वस्थ जीवन के लिए सबसे बडी औषधि है पर वही जब सीमा से बाहर हो जाता है तो दुखदायी हो जाता है । कुछ लोगो को चुटकुले सुनाने का इतना शौक होता है कि वे समय असमय की परवाह किए बिना चुटकुले सुनाना शुरू कर देते हैं । वे अपने शौक मे यह भूल जाते हैं कि लोग उनके चुटकुले सुनकर हँसने के बजाय बोर हो रहे हैं । पार्टियो मे अक्सर जाने-पहचाने लोग मिल जाते हैं । एक सज्जन जब मिलते हैं अपना एक रटारटाया मजाक या चुटकला सुनाना शुरू कर देते हैं, आसपास के लोग मुँह बिचका-बिचका कर उनसे दूर जा बैठते हैं । ऐसी हँसी की बातें किस काम की जो खुशी की बजाय दूसरो पर बोझ बन जाएँ । हँसी मजाक की भी सीमा होती है, समय होता है उसके बिना वह निरर्थक और भौंडा मालूम होता है । सुनने वालो का ध्यान रखकर जो बात कही जाती है वह कला बन जाती है अन्यथा अपना महत्त्व खो बैठती है ।

मेरी एक पडौसिन है जो अपनी बात कहने मे इतनी मशगूल रहती है कि दूसरो की सुनती ही नहीं । मैं कितनी ही बार उनके पास बहुत जरूरी काम मे

मिलने गई किन्तु उन्होंने मौका ही नहीं दिया कि अपनी बात कह सकूँ। उन्हें रोककर बीच में कुछ कहना अच्छा नहीं लगता अतः बिना अपनी बात कहे ही लौट आती हूँ। इस तरह का बोलना सदा खटकता है। आखिर व्यक्ति अपने को ही क्यों इतना महत्त्व दे कि अपनी दिनचर्या सुनाने में दूसरों की बात सुने ही नहीं। रोगी के पास जाकर बैठे तो रोगी की दशा पूछने की बजाय दुनिया भर का अपना इतिहास खोलकर बैठ जाय, यह कौनसी कला है। बोलते समय जो लोग अपनी सीमा का ध्यान नहीं रखते वे जीने की कला नहीं जानते। टेलीफोन भी इसी तरह कभी-कभी जान के लिए बवाल हो जाता है। जिन्हें बोलने की मर्यादा रखनी नहीं आती, वे टेलीफोन पर भी इतनी लम्बी बात करते हैं कि लोग सुनते-सुनते ऊब जाते हैं। मन होता है टेलीफोन बन्द कर दें किन्तु सभ्यता के नाते ऐसा नहीं कर पाते। बिना बात हूँ, हाँ करते बोर होते रहते हैं। आखिर टेलीफोन मनोरंजन का साधन तो नहीं है जो घंटों बैठे उससे खेल करते रहें और सुनने वाले की विवशता का अनुचित लाभ उठाएँ।

अतिरिक्त, व्यर्थ और अनावश्यक बोलना, बिना पूछे बोलना जिनका स्वभाव होता है वे न केवल अपने जीवन को दुःखमय बनाते हैं अपितु समाज में बैठने योग्य नहीं रह जाते। दो व्यक्ति अपनी निजी बातें कर रहे हैं तीसरे सज्जन बिना बात उनके बीच में बोलकर अपनी महत्ता बताने की कोशिश कर रहे हैं। अनौचित्य, असंयत बोलने की जैसी स्वतन्त्रता आज के युग में है वैसी शायद कभी नहीं रही। जिसके जो जी में आता है वह बोलने लगता है। लगता है स्वतन्त्रता का सारा वरदान जैसे वाणी को ही मिला है। हम सारी सीमाएँ तोड़कर बोलते हैं और समझते हैं कि हमने बड़ा मैदान जीत लिया। अपने से बड़ों को गाली देकर, उल्टा सीधा सुनाकर जैसे हम बड़े बन जाते हैं। अपने अहंकार में आत्मप्रशंसा करते हम फूले नहीं समाते किन्तु क्या कभी हम सोचते हैं कि जीवन का सौन्दर्य, चरित्र का आकर्षण बेहिसाब बोलने में नहीं अपितु सीमा में रहकर मधुर और उपयोगी बात बोलने में होता है। जबान पर संयम रखना सबसे बड़ा संयम है। एक कहावत है "एके साधे सब सधे, सब साधे सब जाय" यदि हम ने बोलने की कला सीखली, बोलने की सीमा रखना हमें आ गया तो दुनिया के सब संकटों पर विजय पाने का बल हमें मिल जाता है। महिलाएँ अधिक बोलने के लिए बदनाम हैं। कहा जाता है "चटोरी खोए एक घर, बतोरी खोए दो घर" अर्थात् ज्यादा बोलने वाली स्त्री न केवल अपना समय नष्ट करती है अपितु दूसरे का भी अहित करती है। बोलना अवगुण नहीं है किन्तु सीमा से बाहर बोलना, अधिक और बिना आगा पीछे सोचे बोलना, एक सामाजिक अपराध है जिससे यथासम्भव बचने की चेष्टा करनी चाहिए। जीवन को अधिक आकर्षक और कलापूर्ण ढंग से जीने का उपाय मितभाषण करना है। मितभाषी सब लड़ाई-झगड़ों और प्रपंचों से दूर रह कर सुखी एवं शान्तिपूर्ण जीवनयापन करते हैं।

26

भाव संगम—त्याग

त्याग मनुष्यता का परिचायक एक सार्वभौमिक एवं सार्वलौकिक गुण है। प्राय सभी देशो, सभी जातियो एवं समाजो मे त्याग वृत्ति को मनुष्य का सर्वोत्तम गुण माना गया है। त्याग का सामान्य अर्थ है छोडने की क्रिया। किन्तु इस अर्थ मे यह गुण न होकर जीवनचर्या की एक सामान्य प्रक्रिया है। हम नित्यप्रति किन्हीं वस्तुओ का ग्रहण एवं किन्हीं का परित्याग करते रहते हैं। गुण के रूप मे त्याग का अर्थ है किसी उत्तम या शुभ कार्य के लिए स्वार्थ, सुख, लाभ आदि को छोडने की क्रिया या भाव, अथवा वैराग्य उत्पन्न होने पर सांसारिक माया, मोह, सुख-भोग आदि को छोडने की क्रिया या भाव। गुण के अर्थ मे त्याग का क्षेत्र बहुत उदात्त एवं व्यापक है। दूसरो की भलाई के लिए अथवा आत्मोन्नति के लिए किया गया कोई भी उत्तम कार्य त्याग की सीमा मे आता है। तृष्णा, लालच, स्वार्थ, सुख, कर्मफल की इच्छा, माया-मोह, काम-क्रोध, अहंकार आदि दुर्गुणो का त्याग, त्याग कहलाता है।

सत्य यह है कि कुछ पाने के लिए सब कुछ छोडना पडता है। जो छोड़ नही सकता वह कुछ पा भी नही सकता। यजुर्वेद के अनुसार—

ईशावास्यमिद सर्वं यत्किंच जगत्यांजगत्
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा' मा गृध कस्यस्विद्धनम्।

यह सारी सृष्टि ईश्वर से व्याप्त है, उसने मनुष्य को जो कुछ दिया है, सब प्रकार के लालच और इच्छाओ को त्यागकर उसी मे जीवन यापन करना श्रेयस्कर है। यही मुक्ति का मार्ग है। लालच बुरी बला है। यह स्वार्थ वृत्ति को जन्म देती है जिससे सारे दुःख और विषाद होते हैं। वेदकर्ता ऋषियो ने स्थान-स्थान पर स्वार्थ वृत्ति का निषेध और त्याग का आदेश दिया है। ऋग्वेद का एक मन्त्र है—

मोघमन्न विन्दते अप्रचेता सत्य ब्रवीमि वध इत स तस्य।
नार्यमाण पुष्यति नो सखाय केवलाघो भवति केवलादी॥

अर्थात् जो मनुष्य दान न देकर अपने अर्थ को केवल अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए प्रयोग मे लाता है—वह पाप को खाता है। गीता मे यही बात इन शब्दों मे कही गई है—

भुञ्जते ते त्वघ पापा ये पचन्त्यात्म कारणात्।

त्याग से स्वर्ग और स्वार्थ से नरक मिलता है यह भावना हिन्दी, उर्दू व अंग्रेजी भाषाओ मे समान रूप से अभिव्यक्त हुई है। स्वार्थी एवं त्यागहीन मनुष्य के विषय मे फेलदम ने लिखा है—

Show me the man who would go to heaven alone, and I will show you who will never be admitted there त्यागशील व्यक्ति के लिए जी बी चीवर लिखते हैं—As a man goes down in self he goes up in God अपने को मिटाकर ही ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है। रियाज खैराबादी ने यही भाव 'खुदी मिटे तो खुदा मिले' मे प्रकट किया है।

लोभ सब दुःखो का कारण और त्याग सब सुखो का मूल है। पञ्चतन्त्रकार ने इस विषय मे अनेक कहानियाँ उद्धृत की हैं। मित्रलाभ में उन्होंने कहा है—

लोभात्क्रोध प्रभवति, लोभात्काम प्रजायते।
लोभान्मोहश्च नाशश्च लोभ पापस्य कारणम्॥
धनानि जीवितं चैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत्।
सन्निमित्ते वर त्यागो विनाशे नियते सति॥

लोभ से काम, क्रोध और मोह उत्पन्न होते हैं जो सब पापो का कारण है। बुद्धिमान लोग लोभ छोडकर धन और जीवन को दूसरो के लिए त्याग देते हैं। धन का विनाश निश्चित है अत किसी उत्तम कार्य के लिए इसका त्याग बुद्धिमानी है। वाल्मीकि, कालिदास, भवभूति आदि संस्कृत भाषा के कवियों ने त्याग के इस रूप का वर्णन अपने काव्यों एव नाटकों मे किया है। लालच से दूर परोपकारी वृत्ति राम के चरित्र का मुख्य गुण है। तुलसी के राम का भी यही स्वरूप है।

त्याग के सम्बन्ध मे यही विचार बौद्ध तथा जैन साहित्य में उपलब्ध होते है। वहाँ तृष्णा, क्रोध, लोभ, मोह आदि को अनवक्ता का परम शत्रु माना गया है। धम्मपद मे जो पालि भाषा की सर्वोत्कृष्ट रचना है, मे सर्वत्र इन्ही भावो का प्राधान्य है। एक स्थान पर महात्मा बुद्ध कहते हैं—

क्रोध जहे विप्पज हेया मान।
सञ्जोजन सब्बमतिक कमे॥
त नाम रूपस्मि असञ्जमान
अकिंचन नानु पतन्ति दुखा।

क्रोध को छोडे, अभिमान का त्याग करे, सारे सयोजनो से मुक्त रहे ऐसे नाम रूप मे आसक्त न होने वाले तथा परिग्रह से रहित व्यक्ति को दुख सन्ताप नही देते। कबीर के विचार में सब प्रकार के मद और अहकार को त्याग करने वाले व्यक्ति ही ईश्वर को पा सकते हैं।

विद्या मद, अरु गुनहुँ मद, राजमद उन मद
इतने मद को रद करे, तब पावे अनहद।

हिन्दी के कवि मैथिलीशरण गुप्त ने त्याग को मनुष्यता की परिभाषा माना है। जो दूसरो के लिए त्याग नही कर सकते वे पशु हैं। वे कहते हैं—

यही पशु प्रवृत्ति है कि आप आप ही चरे।
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे।
क्षुधार्थ रन्तिदेव ने किया करस्थ थाल भी।
तथा दधीचि ने दिया परार्थ अस्थि जाल भी।
उशीनर क्षितीश ने स्व मांस दान भी किया।
सहर्ष वीर कर्ण ने शरीर चर्म दे दिया।
अनित्य देह के लिए अनादि जीव क्या डरे।
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे।

वैदेही वनवास मे अयोध्यासिंह उपाध्याय ने सीता का यही त्यागी रूप प्रस्तुत किया है। वह कुल की प्रतिष्ठा के लिए अपना सर्वस्व त्याग कर वन वासिनी हो जाती है। वह कहती है—

वही करूँगी, जो कुछ करने की मुझको आज्ञा होगी
त्याग करूँगी, इष्ट सिद्धि के लिए बना मन को योगी।
सुख, वासना, स्वार्थ की चिन्ता दोनो से मुँह मोडूँगी।
लोकाराधन या प्रभुआराधन, निमित्त सब छोडूँगी।

उपाध्याय जी का मत है—

स्वलाभ तज लोक-लाभ साधन
विपत्ति मे भी प्रफुल्ल रहना
परार्थ करना, न स्वार्थ चिन्ता
स्वधर्म रक्षार्थ क्लेश सहना
मनुष्यता है करणीय कृत्य है।

तुलसी के राम और भरत का चरित्र, गुप्त जी की उर्मिला का जीवन लोक लाभ एव आदर्श के लिए किए गए त्याग के उदाहरण हैं। गुरु नानक ने दूसरों का कष्ट दूर करने के लिए प्रवज्या धारण की। गुप्त जी ने लिखा है—

वढे लोक को अपनाने वे करके क्षुद्र गेह का त्याग।
सन्त शान्ति पाते हैं मन मे हर हर कर औरो की आधि॥

उर्दू के बहुत से कवियो ने उसी आदमी को सच्चा आदमी माना है जो दूसरों के लिए त्याग करता है और उनके काम आता है। असर लखनवी तथा रियाज खैरावादी के विचार हिन्दी कवियो से कितना साम्य रखते हैं ? यह उनकी इन पंक्तियो से स्पष्ट होता है—

किसी के काम न आए तो आदमी क्या है
जो अपनी फिक्र मे गुजरे वोह जिन्दगी क्या है।
हुई खिदमते खल्क जिन जिन का मजहब
खुदा के वही वन्दे मकबूल निकले।
मेरे सिवा नजर न आए कोई दो जख मे
किसी का जुर्म हो मालिक मुझे सजा देना।

अग्रेजी मे भी त्याग और आत्म त्याग की यही महत्ता मानी गई है। श्री आर डी हिचकॉक के शब्दो मे—

Every step of our progress towards success is a sacrifice We gain by loosing, grow by dwindling live by dying

F W Robartson के शब्दो मे 'Self sacrifice illuminated by love, is warmth and life It is the death of christ, the life of God and the blessedness and only proper life of man"

इस प्रकार त्याग के विषय में भिन्न-भिन्न जातियों एव भिन्न धर्मो तथा भिन्न भाषा-भाषी विचारको में भावात्मक एकता के दर्शन होते हैं। सभी ने त्याग की महत्ता को अपनाया है।